अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 08
❑ 1-15 दिसंबर, 2013
❑ वर्ष : 37

कर्तव्यशक्ति का जागरण

हिंसा-शक्ति तथा दण्ड-शक्ति दोनों ही मानव समाज की मूल समस्याओं को हल करने में विफल हुई हैं। किसी तीसरी शक्ति की आवश्यता स्पष्ट दिखती है। यह शक्ति तो वही है, जिसका महावीर, बुद्ध, ईसा ने इतनी कुशलता से प्रतिपादन किया था—यानी प्रेम, अहिंसा-करुणा की शक्ति।

प्रेम-शक्ति पर दण्ड-शक्ति, अहिंसा-शक्ति पर हिंसा-शक्ति तथा करुणा-शक्ति पर कानून-शक्ति हाबी हो गयी है। इसलिए गांधीजी ने कहा था कि अहिंसा में विश्वास करने वालों को राज्य-शक्ति में नहीं जाना चाहिए। विनोबाजी ने लोक सेवकों को राजनीतिक पक्षों में जाने की सलाह नहीं दी और राजनीति के बदले लोकनीति की कल्पना की।

लोगों को विचार समझाना, समझा कर उनके पूर्वाग्रहों को बदलना तथा उनकी व्यक्तिगत एवं सामूहिक कर्तव्यशक्ति को जाग्रत करना, यही हमारा सही मार्ग हो सकता है। इस पद्धति से सामाजिक क्रांति का प्रयास किया जाय तो जहां पहले के प्रयोग विफल हुए, वहां नये प्रयोग सफल हो सकते हैं।

('तीसरी शक्ति' की भूमिका से)

-जयप्रकाश

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 08

1-15 दिसबर, 2013

सर्व सेवा संघ

द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक

बिमल कुमार

मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक

उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क

वार्षिक : 100 रुपये

आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com

sarvodayavns@yahoo.co.in

Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. दो कविताएं / दो ग़ज़लें... 2
2. राजनीति एवं सत्य... 3
3. सदियों पुरानी है भारत... 4
4. भारतीय गणतंत्र के... 7
5. राधाकृष्ण... 9
6. आधुनिक मीडिया और... 11
7. गरीबी-बेकारी की कीमत... 14
8. हिंसा-प्रतिहिंसा मुक्त... 15
9. सत्य-अहिंसा का शस्त्र ही... 16
10. वन हैं तो हम हैं... 17
11. गतिविधियां और समाचार... 19
12. पर्यावरण संकट के हल... 20

केशव शरण की दो कविताएं

(1) बुलबुले और बुलबुलें

मैंने
एक पहाड़ पर
एक जंगल के बीच देखा
एक जगह
फूट रहे हैं
पानी के बुलबुले

एक आदिवासी ने बताया
यह प्रकृति की व्यवस्था है
पेड़ों की बुलबुलों के लिए

और मैं
अपने नगर के बारे में
सोचने लगा
जहां पिंजरों में बंद हैं
बुलबुलें
और व्यवस्था से बाहर है
प्रकृति

(2) जरूर नहीं सोचा होगा

सोचा होगा
स्थान शांत है, सुन्दर है
सोचा होगा
उपलब्ध भी प्राकृतिक सीवर है
जब सोचा होगा
बहुमंजिली इमारतों वाली
पॉश कॉलोनी का नक्शा
सोचा होगा
रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा
और शहर भी निकट है

जरूर नहीं सोचा होगा
कि यह एक नदी
और उसका तट है

❑ एस. 2/564, सिकरौल, वाराणसी-221002, मो. 09415295137

आदिल सरफरोश की दो ग़ज़लें

(1)

नफरत की फैली आग बुझाओ तो बात है
दिल में किसी के प्यार जगाओ तो बात है

हिंसा की लपटों में शहर झोंकने वालों-
सद्भावना के दीप जलाओ तो बात है

मज़हब के नाम पर लोगों को बांटते क्यूं हो-
इनसान को इनसान से मिलाओ तो बात है

मरहम न लगाओ किसी जख्मी की चोट पे-
मुल्क से फसादियों को मिटाओ तो बात है

इधर-उधर की बात बहुत करली दोस्तों-
इनसानियत का पाठ पढ़ाओ तो बात है

तेरा नहीं, मेरा नहीं, ये मुल्क है सब का-
यह बात ज़रा सबको बताओ तो बात है।

(2)

ओ श्रद्धा की देवी, ओ ममता की मूरत।
है सारे जहां को, तुम्हारी जरूरत ॥
चन्दा में तू है, सितारों में तू है।
हर बेबस के, सहारों में तू है ॥
नदियों में तू है, धारों में तू है।
अल्लाह और ईसा के, प्यारों में तू है ॥
तेरी यह दुनिया है, बड़ी खूबसूरत।
है सारे जहाँ को, तुम्हारी जरूरत ॥
तेरे इस जहाँ में, गोरा क्या काला।
तेरे ही दम से, है जग में उजाला ॥
दिलों में दया का, एक भाव जगाकर।
त्याग और तपस्या का, रूप निराला ॥
तेरी रोशनी में है, पश्चिम और पूरब।
है सारे जहाँ को, तुम्हारी जरूरत ॥

❑ 1/7, तलैय्या लेन, फतेहगढ़, फर्रुखाबाद-209601 (उत्तर प्रदेश) मो. 09125351242

संपादकीय

राजनीति एवं सत्य-अन्वेषण

सन् 2014 में होने वाले लोकसभा चुनाव के पूर्व चार राज्यों में जो चुनाव हो रहे हैं, उनमें जिस भाषा का इस्तेमाल राष्ट्रीय स्तर के नेता कर रहे हैं, वह चिन्ता का विषय है। चुनाव प्रचार के दौरान, भाषा के स्तर में गिरावट का एक कारण राजनीति के संचालन की पद्धति में बदलाव भी है।

प्रारंभ में चुनाव लोक शिक्षण का एक बड़ा माध्यम हुआ करते थे। पार्टियां अपने सिद्धांतों एवं विचारों के प्रचार के लिए कई तरीके अपनाती थीं। लेकिन धीरे-धीरे राजनीति सिद्धांतों और विचारों से हटकर व्यक्ति केन्द्रित होती चली गयी। यद्यपि व्यक्ति केन्द्रित होने के बाद भी, अपने को सिद्धांतों एवं विचारों के प्रतिनिधि के रूप में ही प्रस्तुत करते रहे। लेकिन सन् 1991 के बाद, जब पूंजीवाद एवं पूंजीवादी बाजार के वैश्वीकरण की नीति को सभी मुख्य दलों ने स्वीकार कर लिया, तथा विकास के लिए इसे आवश्यक मान लिया, तब सैद्धांतिक एवं वैचारिक मतभेद दिखना बंद हो गये। बाद में जब राजनीति अधिकाधिक व्यक्ति केन्द्रित होती चली गयी, तो व्यक्तियों पर व्यक्तिगत छींटाकशी भी बढ़ती चली गयी। और आज स्थिति यह हो गयी है कि व्यक्तिगत आक्षेप एवं आक्रमण तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होते जा रहे हैं। व्यक्तियों के व्यक्तित्व का खंडन एवं चरित्र-हनन राजनीतिक प्रचार का मुख्य माध्यम बन गया है। मर्यादाएं एक-एक कर खंडित होकर गिर रही हैं। गणतंत्र, गुणतंत्र की ओर बढ़ने के बजाय दुर्गुणतंत्र की ओर बढ़ रहा है। राजनीति के माध्यम से मूल्य आधारित कार्यकर्ता-निर्माण एवं राष्ट्र-निर्माण की संभावना कम से कमतर होती जा रही है। पार्टियां गिरोहों में बदलती जा रही हैं।

यह चिन्ता का विषय जरूर है, लेकिन इस गिरावट को इस रूप में नहीं देखा जाना चाहिए कि राजनीतिक प्रचार में यह गिरावट, व्यक्तियों की कमजोरी मात्र है। आज भी तमाम ऐसे लोग हैं जो राजनीतिक मंच के माध्यम से जब कुछ बोलते हैं तो भाषा की मर्यादा का ध्यान नहीं रखते हैं। लेकिन राजनीतिक मंचों से हट कर, जब व्यक्तिगत स्तर पर व्यवहार करते हैं तो मर्यादा एवं शिष्टता का पालन करते हैं।

इसका एक बड़ा कारण यह रहा है कि दुनिया भर में पिछले 200 वर्षों में जो राजनीतिक परिवर्तन की बयार बही है, उसमें राजनीतिक मूल्यों पर तो जोर रहा है, लेकिन वह सांस्कृतिक व आध्यात्मिक मूल्यों से विरत करने वाला भी रहा है। वैश्विक स्तर पर राजनीतिक मूल्यों का विकास तो हुआ, लेकिन वैश्विक स्तर पर सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास नहीं हुआ। राजनीति वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से विमुख या उसके प्रति निरपेक्ष होती गयी और दूसरी ओर अधिकाधिक व्यक्ति केन्द्रित होती चली गयी। इन दो प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव के कारण राजनीति में विरोधी व्यक्ति की आलोचना अमर्यादित एवं असत्य पर आधारित होती चली गयी। भाषा का संस्कार छूटता जा रहा है।

गांधीजी ने राजनीति को कभी भी अपने सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पहलू से अलग करके नहीं देखा था। लेकिन उनकी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि एक वैश्विक दृष्टि थी। इसी कारण आज विश्व भर में गांधीजी के राजनीतिक तौर-तरीके को समझने की कोशिश की जा रही है, उसे सम्मान से देखा जा रहा है।

दुर्भाग्य से कुछ लोग वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के बजाय, इसे संकीर्ण दायरे में बांधे रखने पर विश्वास करते हैं। वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जैसे संस्कृति एवं अध्यात्म, संगठित धर्म या सम्प्रदाय के साथ जुड़ी चीज है। वे यह भी मानते हैं कि जो लोग किसी संगठित धर्म से जुड़ेंगे वही सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को आत्मसात कर सकेंगे व उसका पोषण कर सकेंगे। यह गलतफहमी लगभग सभी उन लोगों में बनी रहती है जो संगठित धर्म से जुड़े रहते हैं।

जबकि वास्तविकता इससे उलट है। जो संगठित धर्म की सीमाओं एवं कर्मकांड से ऊपर उठ जाते हैं तथा सत्य मात्र के अन्वेषक बन जाते हैं वही वैश्विक सांस्कृतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के वाहक बन पाते हैं। इसी प्रकार, ऐसे लोग जो किसी संगठित धर्म से नहीं बंधे हैं या यहां तक कि नास्तिक हैं, वे भी जब अपने वैचारिक ढांचे से ऊपर उठकर सत्य-मात्र के अन्वेषक हो जाते हैं, तब वे भी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के वाहक हो जाते हैं।

चूंकि राजनीति ने भी अपनी पार्टी एवं पार्टी के नेता के प्रति एक प्रकार की अंधश्रद्धा को बढ़ावा दिया है (यह चाहे कितनी भी क्षणजीवी अंधश्रद्धा क्यों न हो), इस कारण राजनीति भी सत्य के अन्वेषण के मार्ग से भटक गयी है। इनके यहां की विचार-निष्ठा एवं व्यक्ति-निष्ठा सत्य अन्वेषण में बाधक बनने लगी है।

यहां यह ध्यान रखना होगा कि सत्य अन्वेषण किसी एक विचार की प्रतिष्ठा का मार्ग नहीं है। इसके अंतर्गत कई विचार प्रवाहों तथा विचार तरंगों का सह-अस्तित्व रहता है। यदि राजनीति सत्य अन्वेषण के साथ नहीं जुड़ पाती है तो इसे नकार कर, इसके विकल्प को खड़ा करना होगा। बिमल कुमार

सदियों पुरानी है भारत की मिलीजुली विरासत

❑ राम पुनियानी

भारत सदियों से साझा संस्कृति का देश रहा है। बादशाह और राजा आते-जाते रहे परंतु आमजनों में आपसी मेलमिलाप और सद्भाव बना रहा। एक साझा संस्कृति विकसित होती रही। दोनों समुदायों की सामाजिक और राजनैतिक परंपराओं का मेलमिलाप बहुत आसान नहीं था। परंतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा बसने वाले लोगों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया।

भक्ति और सूफी धार्मिक परंपराएं, हिन्दू धर्म व इस्लाम की अंतःक्रिया से जन्मीं और वे हमारी मिलीजुली धार्मिक विरासत की प्रतीक हैं। सूफी और भक्ति संतों का हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मान करते हैं। हिन्दू, सूफी दरगाहों पर हाजिरी देते हैं। मुसलमानों ने भी हिन्दुओं की अनेक धार्मिक परंपराएं अपनायी हैं।

हमारा राष्ट्रीय आंदोलन, हमारे देश के विविधवर्गी चरित्र को प्रतिबिम्बित करता था। इसके विपरीत, स्वाधीनता आंदोलना के दौरान सांप्रदायिक संगठन अपना अलग राग अलापते रहे। वे धर्म पर आधारित राष्ट्र-राज्य बनाने के अपने लक्ष्य को पाने का प्रयास करते रहे, एक ऐसे राष्ट्र-राज्य को जिसकी संस्कृति केवल उनके धर्म पर आधारित होती।

पिछले तीन दशकों के दौरान हमारे देश में सांप्रदायिक संगठनों की ताकत बढ़ी है। इसके पीछे एक कारण है वैश्विक स्तर पर बढ़ता आतंकवाद, जो मध्य एशिया के तेल संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने की राजनीति का परिणाम है।

संस्कृति और राष्ट्र-राज्य : हमारी दुनिया में सत्रहवीं सदी के मध्य से राष्ट्र-राज्यों का उदय शुरू हुआ। ये राष्ट्र-राज्य दो प्रकार के थे—पहले यूरोप के देश, जो कम-से-कम अपने शुरुआती दौर में, एकल संस्कृति वाले देश थे व दूसरे संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश, जहां अनेक संस्कृतियां एक-दूसरे में घुलीमिली थीं। जैसे-जैसे अमेरिका में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से आकर लोग बसते गये, यह बहस जोर पकड़ती गयी कि अमेरिका की संस्कृति बहुरंगी होनी चाहिए या विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से एक नई संस्कृति अपना लेंगे। परंतु ऐसा नहीं हुआ और अंततः अमेरिका विभिन्न संस्कृति का गुलदस्ता बन गया। इन दिनों अमेरिका में दक्षिणपंथियों के ताकतवर होने से एक बार एंग्लो-सेक्सन की प्रभुता स्थापित करने की कोशिश हो रही है।

दक्षिण एशिया में जहां नेपाल एक राजतंत्रीय हिन्दू राष्ट्र था वहीं पाकिस्तान को इस्लामिक राष्ट्र घोषित कर दिया गया। दुनिया के इस हिस्से में भारत ही एकमात्र ऐसा देश था जिसने बहुवादी, बहुसांस्कृतिक, प्रजातंत्र का रास्ता चुना। भारत ने न केवल विभिन्न भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों को स्वीकार किया वरन यह भी तय किया कि राज्य, किसी धर्म विशेष के बताये रास्ते पर नहीं चलेगा। भारत में एक धर्म में कई संस्कृतियां और एक संस्कृति में कई धर्म घुलेमिले हैं।

राष्ट्र-राज्य की शुरुआती एकल संस्कृति वाले देश की अवधारणा अब बदल रही है। दुनिया में लोग एक देश से दूसरे देश जाकर बस रहे हैं और इससे राष्ट्रों और संस्कृतियों की सरहदें टूट रही हैं। न केवल अधिकांश देश बहुसांस्कृतिक बन गये हैं बल्कि उनमें विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का शांतिपूर्ण सहअस्तित्व सुनिश्चित करने का गंभीर प्रयास भी किया जा रहा है। मोटे तौर पर दक्षिणपंथी दकियानूसी तत्त्व, जिनकी आस्था जन्म आधारित ऊंचनीच में है, वे एकल संस्कृति के हामी हैं। इसके विपरीत, अधिकांश, आमजन, विभिन्न संस्कृतियों को अपने राष्ट्र-राज्य के भाग के रूप में और उन संस्कृतियों के असर से स्वयं की संस्कृति में आ रहे बदलाव को सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति क्या है? क्या वह हिन्दू है? क्या वह मुस्लिम है? या कुछ और है? भारत एक ऐसा देश है जहां बिना किसी भेदभाव के सभी धर्मों को फलने-फूलने का अवसर उपलब्ध है। हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म और इस्लाम भारत के लोगों के मुख्य धर्म हैं। इनमें से कुछ धर्म भारत में जन्मे और कुछ संतों, सूफियों व मिशनरियों के जरिये यहां पहुंचे। इस्लाम, मुख्यतः सूफी संतों की शिक्षाओं के जरिये फैला। ईसाईयत को मिशनरियों की शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में परोपकारी कार्यक्रमों ने विस्तार दिया। विभिन्न धर्मों के लोगों ने एक-दूसरे की संस्कृति को अपनाया। हमारे खानपान पर पश्चिम एशिया और दुनिया के कई दूसरे हिस्सों का असर है। हमारे पहनावे और हमारी वास्तुकला के कई तत्त्व हमने विभिन्न धर्मों और विभिन्न देशों से लिये हैं। भक्ति और सूफी परंपराएं इस प्रक्रिया का चरम थीं। आज भी हम विभिन्न धार्मिक कर्मकांडों पर अलग-अलग धर्मों का प्रभाव देख सकते हैं।

इस अंतःक्रिया का अत्यंत सुंदर वर्णन मोहम्मद दारा शिकोह ने अपनी पुस्तक 'मजमा-अल्-बाहरेन' (दो महासागरों का मिलन) में किया है। वे भारत को हिन्दू धर्म और इस्लाम का मिलन स्थल कहते हैं। इसी तरह उर्दू, हिन्दी और फारसी की अंतःक्रिया से जन्मी। सभी राजाओं के दरबार में विभिन्न धर्मों के दरबारी थे। अकबर के खजाने के प्रभारी टोडरमल थे। शिवाजी के सबसे विश्वासपात्र सचिव का नाम मौलाना हैदर अली था। मेवाती मुसलमानों के पूर्वजों का विवरण, हिन्दू पंडितों के पोथों में दर्ज रहता है और केरल के नवायत मुस्लिम, विवाह के समय

अग्नि के चारों ओर सात फेरे लगाते हैं। ये मिली-जुली प्रथाएं और कर्मकांड अपवाद नहीं बल्कि हमारी साझा संस्कृति का भाग हैं। दकियानूसी धार्मिक तत्त्वों के भाग लेने के तथ्य को वे हमारे इतिहास से गायब नहीं कर सकते।

मध्यकाल और बहुवाद : क्या मध्यकालीन इतिहास, केवल मुस्लिम राजाओं के मंदिर तोड़ने और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का इतिहास है? क्या वह हमारे देश का अंधकार का युग था? कतई नहीं। हमारे समाज की विविधता ही हमारी ताकत रही है। यद्यपि यह सही है कि राजा और नवाब अपने साम्राज्यों के विस्तार के लिए एक-दूसरे से लड़ते रहे तथा ब्राह्मण और उलेमा एक-दूसरे की पूजा-पद्धति को नीची निगाहों से देखते रहे परंतु आम लोग, मेहनतकश और वंचित वर्गों के सदस्य एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाल जीते रहे। राजाओं को अपना साम्राज्य बढ़ाने और दूसरों को अपमानित करने की जुगत भिड़ाते रहते थे परंतु कवि, साहित्यकार, वास्तुविद, कलाकार, चित्रकार व रचनात्मक कार्यों में रत अन्य वर्ग अपनी विधा में अन्य धाराओं के तत्त्व शामिल करने में सकुचाते नहीं थे। इस प्रक्रिया में उन्होंने कला और साहित्य को और समृद्ध किया।

धर्म : धर्म के क्षेत्र में भी हिन्दू धर्म और इस्लाम ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। हिन्दू धर्म से भक्ति परंपरा उभरी और इस्लाम से सूफी परंपरा। कबीर, नानक और तुलसीदास इस साझा धार्मिक विरासत के प्रतीक थे। उन पर दोनों धर्मों का असर था। कबीर ने ब्राह्मणों की भाषा, संस्कृत को खारिज कर सामान्यजनों की हिन्दी को अपनाया। उन्होंने दोनों धर्मों के बीच सेतु बनाये। अपने एक पद में वे कहते हैं कि जैसे सभी गहने सोने के बने होते हैं, उसी तरह अल्लाह, राम, रहीम और हरि एक ही ईश्वर के अलग-अलग नाम हैं। हिन्दुओं की पूजा और मुसलमानों की नमाज एक ही ईश्वर की आराधना करने के अलग-अलग तरीके हैं। कबीर संगठित धर्म के कड़े आलोचक थे। वे उन धार्मिक परंपराओं के भी विरोधी थे, जो लोगों को बांटती थी। वे मुल्ला और पंडित दोनों को बराबरी से फटकारते हैं। कबीर ने जातिप्रथा और छुआछूत जैसी धर्म का लबादा ओढ़ी हुई सामाजिक बुराइयों पर भी कड़े प्रहार किये। उनकी रचनाओं ने सभी धर्मों के लोगों को प्रभावित किया। उनके अनुयायियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे।

तुलसीदास के अपने बारे में लिखे एक दोहे से तत्कालीन समाज के अंतधार्मिक रिश्तों पर प्रकाश पड़ता है। वे लिखते हैं :

तुलसी गुलाम सरनाम है राम को,
जाको रूचै सो कहे कछु वोहू।
मांग के खयिबो, मस्जिद में रहिबो,
लेबै का एक न देबै को दोऊ।।

(तुलसीदास, 'कवितावली' से)

राम के सबसे महान भक्तों में से एक मस्जिद में रहते थे और वहीं से उनकी राम भक्ति की धारा बही।

गुरुनानक समाज में शांति के पक्षधर थे। उन पर कबीर का गहरा असर था और वे धर्मों के समन्वय में विश्वास करते थे। गुरुनानक ने हिन्दू धर्म और इस्लाम—दोनों की शिक्षाओं को अपनाया। इस्लाम से सिक्ख धर्म ने एक ईश्वर की अवधारणा और मूर्तिपूजा पर प्रतिबंध ग्रहण किया तो हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म और कर्म की अवधारणाओं को अपनाया। सिक्ख धर्म जाति व्यवस्था के खिलाफ था। सिक्खों की पवित्र पुस्तक 'आदि ग्रंथ' में कबीर और बाबा फरीद जैसे सूफी संतों के अनेक उद्धरण हैं। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर का शिलान्यास सूफी संत मीर मियां ने किया था।

समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग और नीची जातियों से बड़ी संख्या में लोग सूफी संतों की ओर आकर्षित हुए। सूफियों की आडंबरहीन, सादी जीवन-शैली ने नीची जातियों के बहुत से लोगों को इस्लाम अपनाने की प्रेरणा दी। सूफी मजारें सभी धर्मों के लोगों के लिए खुली थीं। सूफी आंदोलन, उलेमा के परंपरागत इस्लाम के विरुद्ध एक तरह का विद्रोह था। सूफी, इस्लाम के आध्यात्मिक पक्ष को महत्त्व देते थे। मुईउद्दीन इब्न अरबी नाम के एक महान सूफी संत ने 'वह्दतुलवूजूद' अर्थात् अद्वैतवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह सिद्धांत, जाति और धर्म की दीवारों को तोड़कर आध्यात्मिक एकीकरण की बात करता था। वह कहता है कि हम सब एक ही परमात्मा की संतानें हैं। इस सिद्धांत ने विभिन्न धर्मो के मानने वालों के बीच सद्भाव और बंधुत्व को बढ़ावा दिया।

सूफी संत आम जनों की भाषा में संवाद करते थे। बाबा फरीद का काव्य पंजाबी भाषा में है और गुरु ग्रंथ साहिब का हिस्सा है। बाबा फरीद के सबसे प्रसिद्ध अनुयायी थे निजामुद्दीन औलिया, जो बड़े गर्व से कहते थे कि ईश्वर की आराधना करने के उतने ही तरीके हैं जितने इस दुनिया में रेत के कण हैं। वे भजन और कव्वाली के शौकीन थे और स्थानीय परंपराओं की बहुत इज्जत करते थे।

निजामुद्दीन औलिया के जीवन से जुड़ी एक छोटी-सी कहानी बताती है कि वे कट्टरता से कितने दूर थे और स्थानीय परंपराओं के प्रति उनके मन में कितना सम्मान था। ''एक दिन वे अपने शिष्य, प्रसिद्ध कवि खुसरो के साथ यमुना नदी के तट से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि कुछ हिन्दू औरतें नदी में नहा रही हैं और सूर्य को अर्ध्य दे रही हैं। इस दृश्य को देखकर उन्होंने कहा 'ए खुसरो, ये औरतें भी अल्लाह की इबादत कर रही हैं। उनका इबादत का अपना तरीका है।' फिर उन्होंने कुरान की आयत सुनायी, 'सब किसी न किसी दिशा में मुड़ते हैं इसलिए एक-दूसरे के साथ अच्छा काम करने का मुकाबला करो।''

यह दिलचस्प है कि जहां उलेमा दूसरे धर्मों के अनुयायियों के निन्दक थे और उन्हें काफिर कहते थे वहीं सूफी, सभी धर्मों के आध्यात्मिक पक्ष को अपनाते थे और उसका सम्मान करते थे। मजहर-जान-ए-जानां जानेमाने सूफी धर्मशास्त्री थे जो सभी धर्मों का सम्मान और आदर करते थे। बादशाह शाहजहां के उत्तराधिकारी दारा शिकोह—जिनका उनके ही भाई ने गद्दी के लालच में कत्ल कर दिया था—संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान थे। उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रंथों को गहराई से अध्ययन किया था और अपनी पुस्तक 'मजमा-अल्-बहेन' (दो महासागरों का मिलन) में वे सूफी और इस्लाकि धार्मिक शब्दावली की तुलना हिन्दू धार्मिक शब्दावली से कर यह दिखाते हैं कि दोनों में कितनी अधिक समानताएं हैं।

दोनों धर्मों की परंपराओं और विश्वासों के सम्मिश्रण के परिणाम का अत्यंत सारगर्भित वर्णन जानेमाने इतिहासविद् डॉ. बी. एन. पांडे ने किया है, "हिन्दू धर्म और इस्लाम, जो प्रारंभ में एक-दूसरे के विरोधी जान पड़ते थे, अंततः आपस में घुलमिल गये। दोनों धर्मों ने एक-दूसरे को गहराई तक प्रभावित किया और उनके मिलन से शक्ति और तसव्वुफ जैसे प्रेम और समर्पण के धर्मों का जन्म हुआ। इन धर्मों ने भारत के सभी धर्मावलंबियों के दिलों को जीत लिया। इस्लामिक सूफी और हिन्दू भक्ति की धाराएं आपस में मिलकर ऐसी विशाल नदी बन गयीं जिसने बंजर और उजाड़ इलाकों को फिर से हराभरा कर दिया और देश के चेहरे को बदल डाला। वह भारत की आत्मा ही थी जिसने इस्लाम और हिन्दू धर्म को मिलाने का असंभव प्रतीत होने वाला काम कर दिखाया और इससे कला, साहित्य, चित्रकला, संगीत और कविता के ऐसे लाजवाब रत्नों का सृजन हुआ जो भारतीय इतिहास की अमूल्य विरासत हैं।

संस्कृति : मुस्लिम शासकों व इस्लाम की स्थानीय संस्कृति के साथ घुलने-मिलने का जीवन के हर क्षेत्र पर असर पड़ा। संगीत में खयाल, गजल और ठुमरी इसी सम्मिश्रण का नतीजा है। जिसे हम आज उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत कहते हैं, उसका जन्म 500 वर्ष पूर्व हिन्दू व इस्लामिक संगीत के तत्त्वों के आपस में अच्छी तरह से घुलमिल कर एकसार हो जाने से हुआ था।

बीजापुर के बादशाह इब्राहिम द्वितीय (1580-1626) के दरबार में 300 हिन्दू गायक थे। मुसलमानों में संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिए उसने उर्दू में 'किताब-ए-नौरंग' लिखी जो 59 कविताओं का संग्रह है। इनमें से पहली कविता देवी सरस्वती की प्रार्थना है। चैतन्य महाप्रभु और अन्य वैष्णव संतों ने कई मुसलमानों को उनकी तरह का लेखन करने के लिए प्रेरित किया।

रहीम और रसखान की भगवान कृष्ण पर ब्रज भाषा में लिखी गयी कविताएं आज भी लोकप्रिय हैं। सैय्यद वाजिद शाह ने मध्यकालीन भारत की उत्कृष्टतम साहित्यिक कृति 'हीर-रांझा' लिखी थी। शेख मोहम्मद की मराठी साहित्यिक रचनाओं की तारीफ शिवाजी के गुरु स्वामी रामदास ने भी की थी।

फारसी और दिल्ली के आसपास के इलाकों में बोली जाने वाली हिन्दी के सम्मिश्रण से एक नई भाषा अस्तित्व में आयी जिसे बाद में उर्दू कहा गया। अनेक हिन्दू विद्वानों ने उर्दू में निपुणता हासिल की। उर्दू उस समय की प्रशासनिक भाषा भी थी। हिन्दुओं ने उर्दू में साहित्य रचना भी की।

हिन्दू वास्तुकला में बारीक नक्काशी की परंपरा थी जबकि इस्लामिक वास्तुकला अपनी सादगी भरी सुंदरता के लिए जानी जाती थी। आगरा के किले में स्थित जोधाबाई का महल, फतेहपुर सिकरी और कुवत-उल-इस्लाम मस्जिद के गुंबद, हिन्दू और इस्लामिक वास्तुकला के मिश्रण के उत्कृष्ट नमूने हैं। राजस्थान और मध्य प्रदेश की हवेलियां और जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर की भारत-अरब वास्तुकला भी इसी सम्मिश्रण के उदाहरण हैं। फारसी चित्रकला और चमकीले हिन्दू रंगों के संगम ने लघु चित्रों को सुंदरता और लय दी।

मध्यकालीन समाज के आपसी सद्भाव की एक निशानी ऐसी है जिसे सांप्रदायिक ताकतों के अनवरत हमले भी नष्ट नहीं कर सके। और वह है सूफी दरगाह।

ये दरगाहें देश के विभिन्न शहरों में बिखरी हैं और इनका प्रबंधन हिन्दू या मुस्लिम परिवारों के हाथों में है। धर्म की राजनीति करने वालों के दिन-रात जहर उगलने के बाद भी सभी धर्मों के लोग इन मजारों पर हाजिरी देते हैं।

मुंबई के नजदीक हाजी मलंग शाह की मजार, मध्यकालीन भारत के सांझा मूल्यों का सुंदर प्रतीक है। इस मजार के ट्रस्टी हैं कैलाशनाथ गोपाल केतकर, जो कि एक ब्राह्मण हैं। उनका परिवार पीढ़ियों से इस मजार की व्यवस्थाओं का संचालन कर रहा है। यहां पर चढ़ाई जाने वाली वस्तुओं पर हिन्दू धर्म और इस्लाम का मिलाजुला असर देखा जा सकता है। यहां आने वाले श्रद्धालु चादर, नारियल, फूल और फूलों की चादर चढ़ाते हैं।

इस तरह के उदाहरण पूरे भारत में मौजूद हैं। इन दिनों इस सांझी विरासत को नकारने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसके विपरीत, तत्कालीन समाज के श्रेष्ठ वर्ग और शासकों के बीच के वैरभाव को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जा रहा है। मध्यकालीन इतिहास को उसके संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। भारत की सांझा संस्कृति की इस विरासत को पर्याप्त महत्त्व दिये जाने की आवश्यकता है। यही वह विरासत है जिसने हमें एक-दूसरे से प्यार करना, एक-दूसरे की इज्जत करना और एक-दूसरे के प्रति सहिष्णु होना सिखाया है।

....क्रमशः अगले अंक में

(45वां अखिल भारतीय सर्वोदय समाज सम्मेलन, आगरा (उ.प्र.) में 24 अक्टूबर, 2013 को दिये गये भाषण का सार।)

भारतीय गणतंत्र के प्रधानमंत्री का गुण एवं चरित्र

❑ डॉ. रामजी सिंह

रामायण के प्रणेता महर्षि बाल्मिकी ने महान तपस्वी मनस्वी एवं श्रेष्ठतम बुद्धिमान देवर्षि नारद से अपने प्रस्तावित आदि काव्य रामायण के लिए मुख्य पात्र के गुण और चरित्र के विषय में जिज्ञासा रखी थी ''को न्वस्मिन्सांपृतं लोके'' महाकाव्य का वह प्रमुख पात्र हो राम की तरह गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी एवं दृढ़व्रती होना चाहिए। उसके चरित्र में सभी प्राणियों के लिए मंगल भावना (सर्व भूत हिते रता) विद्वान और सामर्थ्यवान होना चाहिए।

इस दृष्टि से उस समय अयोध्या में स्वाभाविक रूप से राम का नाम आता है और इसीलिए राम के चतुर्दिक ही राम-कथा का प्रणयन हुआ। आज भारत में राजतंत्र नहीं बल्कि लोकतंत्र है और लोकतंत्र के विधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक विहित प्रणाली से होता है। लेकिन भारत का राष्ट्रपति न तो संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति के समान स्वत्व और प्रभुत्व से सम्पन्न है और न ही भारत की संसद ब्रिटेन की संसद की तरह सर्वशक्ति सम्पन्न है और वहां राजा मात्र एक संवैधानिक प्रधान है।

भारत के संविधान के अनुसार लोकसभा को भंग करने का भी अधिकार राष्ट्रपति को है लेकिन शर्त यह है कि उसके लिए संसद में बहुमत से विश्वास प्राप्त सरकार की ऐसी अनुशंसा हो तो ऐसी स्थिति में अल्पमत की कोई सरकार की अनुशंसा का कोई अर्थ नहीं है। जहां तक प्रधानमंत्री के मनोनयन का प्रश्न है तो उसके लिए संवैधानिक अर्हता क्या होना चाहिए? भारतीय संविधान में प्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक दल का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, केवल यह प्रावधान है कि जिस व्यक्ति को लोकसभा के निर्वाचित सदस्यों का बहुमत से विश्वास प्राप्त हो, वही भारत का प्रधानमंत्री बन सकता है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से पार्टियां या तो अकेले या मिलकर किसी लोकसभा में अपना नेता चुनती हैं और फिर उसके बहुमत की परीक्षा आवश्यकतानुसार राष्ट्रपति के आदेश से लोकसभा में होता है। इसी दृष्टि से किसी दल द्वारा चुनाव के पहले भावी प्रधानमंत्री की घोषणा के लिए संवैधानिक बाध्यता नहीं है। लेकिन व्यवहारिक रूप से यह परंपरा अकसर चलती है कि दलों के घोषणापत्र में भी एकाध अपवाद को छोड़कर (1980 के लोकसभा चुनाव में जनता पार्टी के घोषणापत्र में जगजीवन राम के नाम का उल्लेख था।) भारत में लोकतंत्र के साथ व्यक्ति तंत्र का ऐसा सम्मिश्रण है कि जहां लोकसभा के चुनाव के पूर्व ही प्रायः हर दल अपना नेता घोषित कर देते हैं जो आगे चलकर प्रधानमंत्री के उम्मीदवार होते हैं या असफल होकर अपनी जगह रहते हैं।

(क) समासिक एवं समन्वय की संस्कृति : संवैधानिक दृष्टि से चाहे जो हो लोकसभा निर्वाचन के पहले किसी व्यक्ति का प्रधानमंत्री का चुनाव करने के समय संवैधानिक कठिनाइयों को हम अगर छोड़ भी दें तो नैतिक और राजनैतिक दृष्टि से इसे एक स्वस्थ परंपरा नहीं कहा जा सकता है। हमें यह देखना चाहिए कि भारत की वर्तमान स्थिति में इसकी जनसंख्या, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक भावना आदि पर ध्यान देना चाहिए, ताकि जो भी सरकार शासन में आवे वह किसी दल विशेष का न होकर अधिक-से-अधिक जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार से हम सोचें तो हमें ऐसे व्यक्ति को इस दायित्व के लिए चुनाव करना चाहिए जो भारत की समासिक संस्कृति के अनुरूप हो। भारत भले ही हिन्दू बहुसंख्यक देश है लेकिन यहां प्राचीनकाल से ही वैदिक श्रमण और लोकायत संस्कृतियों के साथ अनेक प्रजातियों एवं संप्रदायों का निरापद अस्तित्व दिखता है। शक, शिथियन, यूनानी, गुजर, प्रतिहार, हूण, पठान, मुगल, पारसी, बौद्ध, जैन, ईसाई आदि सभी का निवास यहां रहा है और वे इस गणतंत्र के वैधानिक नागरिक भी हैं और उनकी भावना भी इस देश की एकात्मकता के लिए इसका रक्षा कवच है। यह कैसे अक्षुण्ण रहे, हम सभी के लिए एक समान दायित्व है। ऐसे भी यह देश संवैधानिक रूप से धर्मनिरपेक्ष या सर्वधर्म समभाव का संवैधानिक और नैतिक मान्यताओं से संरक्षित है। इसलिए इस बिन्दु को और कुछ नहीं तो राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सद्भाव तथा सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से सोचना चाहिए।

(ख) अंतिम व्यक्ति या अन्त्योदय : भारत के भावी प्रधानमंत्री के लिए आज की दारूण, दरिद्रता और भयानक विषमता के समय हमें ऐसा प्रधानमंत्री चाहिए जिसकी प्राथमिकता में अंतिम व्यक्ति का कल्याण या अंत्योदय की भावना हो। गांधीजी ने अपनी 'अनोखी ताबीज' में यह स्पष्ट किया था कि ''जब कभी हमें किसी प्रश्न पर असमंजस हो तो हमें देश के उन करोड़ों दुखी-दरिद्र और असहाय व्यक्तियों का मुख मंडल सामने रखकर अपना निर्णय करना चाहिए कि क्या हमारे कदम उनके हित में हैं कि नहीं।'' यह कोई भावात्मक बात नहीं है। आज जो अपने सामर्थ्य से बाहर जाकर लोकसभा और राज्यसभा में प्रायः सभी दल मिल जुलकर खाद्य सुरक्षा बिल पारित कर दिया। इसलिए

अब अगला कदम अनिवार्य रूप से काम के अधिकार का आता है। प्रधानमंत्री का जो उम्मीदवार अपनी आर्थिक नीति की प्राथमिकता दरिद्र नारायण को रखेगा वही इस दायित्व को निभा सकेगा। इसके बिना देश अस्त-व्यस्त तो रहेगा ही और वह नक्सलवाद, माओवाद के आतंकी कार्य का सहायक माना जायेगा। गीता में भगवान ने कहा है कि ''दरिद्रण भर कौन्तेय''।

(ग) नागरिक शक्ति बनाम सैन्य शक्ति : भारत विविधताओं का देश है। यहां दुनिया के सात बड़े धर्म, ढाई सौ पंथ, साढ़े पांच हजार जातियां, पचासों भाषाएं और दस सौ चौबीस बोलियां और न जाने कितने खंड-उपखंड हैं। इसके साथ आर्थिक विषमता भी पराकाष्ठा पर है। देश की लगभग ८० करोड़ जनता की दैनिक आमदनी केवल १८ रुपये प्रतिदिन है और यहां की विषमता लगभग दस लाख गुना पर पहुंच गयी है। ऐसी स्थिति में असंतोष और हिंसा का ज्वारभाटा उठना स्वाभाविक है। शायद इसी को देखकर महात्मा गांधी ने अपनी आखिरी वसीयत में हम सबको अगाह किया था कि ''भारत के आजाद होने के बाद यहां नागरिक-शक्ति और सैन्य-शक्ति के बीच संघर्ष अपरिहार्य है। यदि आरक्षी एवं सैन्य-शक्ति पर हमारा विश्वास बढ़ेगा तो यहां लोकतंत्र चल नहीं सकता। एशिया, अफ्रीका के दर्जनों देशों में आजादी के बाद लोकतंत्र के बदले सैनिक तानाशाही कायम हो गयी है। इसीलिए आज यदि हम अपने दैनिक जीवन के कामकाज में पुलिस एवं अर्द्धसैनिक बलों के अनेकानेक वर्गों के ऊपर अधिक-से-अधिक आश्रित रहेंगे तो हमारा लोकतंत्र शायद सुरक्षित नहीं रहेगा। इसलिए समाज के सभी संगठनों शांति और अहिंसा की निष्ठा को हमें मजबूत करना होगा, जिसके लिए प्रारंभ से लेकर उच्च शिक्षा में शांति के अध्ययन और अहिंसा के संगठन के विषयों को अनिवार्य रूप से शामिल करना होगा। तभी समाज हिंसा की ज्वाला से बच सकेगा।

(घ) ग्रामीण भारत : भारत प्राचीनकाल से ही ग्रामीण संस्कृति और परंपरा का देश रहा है। अभी भी लगभग ७० प्रतिशत लोग गांवों में ही रहते हैं लेकिन एक ही देश में दो दृश्य देखने को मिलता है। शहरी भारत 'इंडिया' के रूप में है और ग्रामीण भारत को हम 'भारत' कहते हैं। कहा तो यह जा रहा है कि भारत में २०९० तक लगभग ९० प्रतिशत लोग शहरीकरण का लाभ उठाने लगेंगे। लेकिन आज जब केवल ३०-३५ प्रतिशत जनसंख्या ही शहरों में है और वह नारकीय जीवन बिता रही है। यदि शहरी जनसंख्या ८०-८५ प्रतिशत हो जायेगी तो कैसी भयानक स्थिति होगी, यह विचारणीय है। गांवों का जीवन तो केवल बेबसों, दुखियों और अंतिम व्यक्तियों के लिए रह गया है। भारत की अर्थनीति में गांव का स्थान अत्यंत अपेक्षित है। गांव के चरवाहे, हलवाहे और अन्य कर्मियों की दैनिक आमदनी शहरी उद्योगों और सरकारी नौकरियों में रहने वालों की आमदनी में काफी अंतर है। गांव में काम करनेवाले को व्यक्तिगत आधार पर मजदूरी दी जाती है जबकि उद्योगों और सरकारी नौकरियों में पूरे परिवार को मानकर मजदूरी निर्धारित होती है। शहरों में अच्छी सड़क, अच्छे मकान, अच्छे स्कूल, अच्छे अस्पताल आदि सुविधाएं मौजूद हैं जबकि गांव की सुविधाएं भगवान भरोसे हैं। कृषि में लागत ज्यादा और आमदनी कम है। इस देश में पांच लाख से अधिक किसानों को आत्महत्या करना पड़ा है। इसलिए भारत का भावी कर्णधार ग्राम दृष्टि का होना चाहिए। हमारे शहरों में भी जो जानवरों से भी बदतर स्थिति में स्लम एरिया में रहने वाले लोग हैं उनपर भी हमारा वही खयाल है।

(ङ) अहिंसक विश्व में अहिंसक भारत : आज कोई भी देश विश्व में अकेला नहीं रह सकता। भारत की संस्कृति प्रारंभ से ही वैश्विक रही है। वसुधैव कुटुम्बकम् हमारा आदर्श रहा है। ''माता भूमिः पुत्रे, अहम् पृथ्वियां'' हमारा जीवन मंत्र है। राजनीति ही नहीं जीवन के सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार अपने चरम पर पहुंच गया है। कोई दल शायद ही इस महापातक से बचा हो। राजनीति में तो भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है। लाखों-हजारों करोड़ के घोटालों से हम विश्व के स्तर पर अपना मुंह दिखाने लायक नहीं हैं। केन्द्रीय और राज्य के मंत्रियों और विरोधी दल के नेताओं के भ्रष्टाचार की बातें तो अलग रहीं; आज तो मुख्यमंत्रियों और प्रधानमंत्री पर भी भ्रष्टाचार की अंगुलियां उठ रही हैं। ऐसी स्थिति में अगर राष्ट्र को विश्व के स्तर पर एक सम्मानित और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में उभरना हो तो हमें स्व. लालबहादुर शास्त्री और अटल बिहारी वाजपेयी जैसे लोगों का आदर्श रखना होगा। आज इसी को ध्यान में रखकर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसा की राजनीति को पुष्पित एवं पल्लवित करने के लिए सभी राष्ट्रों द्वारा निःशस्त्रीकरण और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था आवश्यक है। इस दिशा में भारत की गुटनिरपेक्ष वैदेशिक नीति जिसके सूत्रधार भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू थे, को याद रखना होगा। बड़े ही जटिल समय में दुर्भिक्ष से पीड़ित भारत को भी उन्होंने सैनिक कवायद के आगे झुकने नहीं दिया था। यदि आज भी गुटनिरपेक्ष विश्व की राजनीति की जो उपेक्षा करेंगे वे भारत की आत्मा का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेंगे। चूंकि विश्वशांति भारत की सांस्कृतिक धरोहर और विज्ञान की अनिवार्यता भी है।

(च) प्रधानमंत्री का व्यक्तिगत चारित्र्य : आज जब हम सिद्धांतों की चर्चा करते हैं तो वे इतने अमूर्त और निराकार होते हैं कि उनका कोई अर्थ नहीं निकलता है। इसलिए हमें भावी प्रधानमंत्री के व्यक्तिगत चरित्र को भी सामने रखना होगा। बाल्मीकि→

राधाकृष्ण

❑ न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

ऐसा कहा जाता है कि अनुकरण प्रभु रामचंद्र के जीवन का करें, श्रीकृष्ण के चरित्र का नहीं। ऐसा क्यों कहते हैं? यह मेरे जैसे सामान्य मनुष्य की समझ से परे की बात है। मुझे तो राधाकृष्ण संयुक्ताक्षर होने के नाते अप्रतिम लगते हैं इसीलिए तो कृष्ण के कार्यों को भी लीला कहा जाता है, किन्तु इस लीला में अनैतिकता की भावना कहीं नहीं है। इस कृष्णलीला का यथार्थ महत्त्व यही है कि इसमें आत्मा की लिप्तता नहीं है; वैसी ही पवित्रता यथावत् बनी हुई है, आत्मा लिप्त नहीं है। यह लीला सभी अर्थों में देहातीत है, दैहिकता का लवलेश भी नहीं है। विकार तथा वासना से रहित प्रेम का ऐसा अप्रतिम प्रतीक कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। द्रौपदी ने भी वस्त्रहरण के समय कृष्ण को जिस नाम से पुकारा वह है, 'गोपीजन-प्रिय'। गोपीजन-प्रिय का अर्थ है जिसे गोपी प्रिय हैं तथा जो गोपीजनों का प्रिय है। कृष्ण ने गोपियों को यमुना में स्नान करते समय उनके वस्त्रों को झाड़ों पर ले जाकर रख दिया था। इसमें नटखटपन चाहे रहा हो, किन्तु विकार और वासना नहीं थे। कृष्ण के मन के भाव यदि तब पापमय होते, तो वस्त्रहरण के समय द्रौपदी को कृष्ण का स्मरण कैसे आया होता? ऐसा कहते हैं कि आज भी स्त्रियां वृन्दावन के यमुना तट पर साड़ी के प्रतीक रूप में रूमाल झाड़ों पर बांधती हैं; कारण कि कृष्ण ने गोपियों के वस्त्र उठाये थे इसमें दैहिकता का अंश नहीं होने से लोकलाज का भाव भी नहीं था। गोपियों के मन में भी वह भाव नहीं आया, क्योंकि उन्हें मालूम था कि यदि किसी समय दुर्जन व दुष्ट लोगों ने उनके वस्त्रहरण की चेष्टा की, तो कृष्ण ही उनकी लाज की रक्षा के लिए सदैव तत्पर व उपस्थित रहेंगे और द्रौपदी को जैसे और वस्त्रों की पूर्ति हुई, उसी प्रकार उन्हें वस्त्र प्राप्त होंगे, और वे वस्त्र कभी भी समाप्त नहीं होंगे। इतना विश्वास किसी पुरुष पर तभी हो सकता है जब उसका नाता सहज व विकाररहित हो; उसमें दैहिकता व वासना का स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में स्त्री व पुरुष के संबंध तुल्यसत्त्व होते हैं। इस संपर्क में परस्पर निर्भयता तथा पवित्रता होती है, इसलिए एक-दूसरे के प्रति विशुद्ध स्नेह हो सकता है। इसमें अनासक्ति के साथ ही प्रेमपूर्ण मैत्रीभाव होता है; ऐसे वासनारहित अर्थात् कामनानिरपेक्ष संबंध स्थापित हुए बिना मानवीय दृष्टि में स्त्री व पुरुष इन दोनों की भूमिका सदोष ही रहेगी। अंततः लज्जा, आबरू, इज्जत, यह शारीरिक नहीं अपितु मानसिक अवस्था की मानसिकता है। मन, शुद्ध व पवित्र हो, तो जबरदस्ती या बलात्कार से स्त्री भ्रष्ट नहीं होती, उसकी आबरू नहीं जाती। यदि ऐसा नहीं होता तो तन के दुबले किन्तु मन से सशक्त महात्मा गांधी के बजाय कोई गामा पहलवान ही हमारा नेता बन गया होता।

महात्मा गांधी अपनी नातिनों की आयु की लड़कियों के कंधे पर हाथ रखकर घूमने जाते थे, इस पर कितने ही लोगों ने आलोचना की है। किन्तु गांधीजी अथवा उस लड़की के मन में कभी भी दैहिकता अथवा वासना के स्फुरण का प्रश्न ही नहीं था। सर्व अर्थों में आलोचना करने वाले ही पापी मन के थे। कारण यह है कि उनको स्त्री-पुरुष संबंधों में कामवासनारहित संबंधों की कल्पना तक नहीं थी। 'अग्नि के पास मक्खन ले गये तो उसे पिघलना ही है' ऐसा कहने वालों के लिए राधाकृष्ण के मध्य पारस्परिक सख्यभक्ति की कल्पना तक कर पाना इस जन्म में तो शक्य नहीं है। राधाकृष्ण के भक्तिभाव में समानता थी, इसी से तो वे दोनों निर्लिप्त तथा अनासक्त भाव से कृष्णलीला में शामिल हो सके। मानवीय संबंधों व मन को दैहिक व नैसर्गिक सीमा के परे ले जाकर

→ने उस राम का चरित्र महाकाव्य में निरूपित किया था जिसने लोकभावना के लिए अपनी प्रियतमा सीता को भी निर्वासित कर दिया था। (लोकाराधनाय त्यजदेकम् जानकिभिवि)। वैश्विक दृष्टि के साथ उनका व्यक्तिगत आचरण भी अनुकरणीय होना चाहिए। आज तो संसद से अपराधिक चरित्र वाले व्यक्तियों को पुनः उम्मीदवार होने से वंचित रखने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश की भी उपेक्षा करने के लिए सभी दल स्वाभिमान और नैतिकता भूलकर घुटने टेक दिये। लेकिन भारतीय गणतंत्र का कोई आदर्श प्रधानमंत्री हो तो उसे इस अनैतिक निर्णय को उलटने की घोषणा करने का साहस नहीं होगा। इसके साथ ही लोकसभा आज पूंजी और पूंजीपतियों के हाथों में खेल रही है क्योंकि लोकसभा में चुनाव के लिए प्रति व्यक्ति कम-से-कम दस करोड़ रुपये जुटाना चाहिए। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र के नाम पर पूंजीपतियों द्वारा स्वच्छ शासन के लिए द्रौपदी की चीर हरण रोकने के लिए श्रीकृष्ण की भूमिका वाला व्यक्ति चाहिए।

हमारा उपरोक्त चिन्तन हमारे मस्तिष्क का छल-छंद नहीं बल्कि हमारी अंतरात्मा की अभिव्यक्ति है। मैं किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हूं और मेरा कोई मठ भी नहीं है। मैं निर्वैर, निष्पक्ष और निर्भीक भाव से संपूर्ण राष्ट्र के लिए निवेदन कर रहा हूं। इसमें यदि किन्हीं को किसी प्रकार की विसंगति दिखाई पड़े या कुछ और इसको समृद्ध करना चाहें तो उनका हम स्वागत करते हैं। ❑

एकरूपता का निर्माण करना यही तो राधाकृष्ण के जीवन का कार्य था। उस संबंध में वासना अथवा प्रभुत्व-भावना नहीं थी, अभिमान नहीं था, और ऐसा कहा जाता है कि अभिमान विसर्जित होते ही खरी प्रेम-भावना व स्नेह की शुरुआत होती है। हम अनेक वर्षों से राधाकृष्ण के भजन गाते हैं, किन्तु यह भूल जाते हैं कि दोनों ही अनासक्त प्रेम की मूर्ति थे। राधा तो निष्काम आराधना की प्रतीक थीं। इनका अनुकरण क्यों न करें? ये केवल रचे हुए चरित्र नहीं हैं, अपितु मूर्तिमंत्र चारित्र्य हैं, जिनका अनुकरण समय की मांग है।

इस चारित्र्य का अनुकरण किया तो स्त्री-पुरुष के संबंध को नवीन आयाम प्राप्त होगा। आज के युवक-युवतियों में ऐसी मित्रता क्यों न हो? इसके बिना सामाजिक ब्रह्मचर्य की भावना का विस्तार कैसे होगा? आज सहशिक्षा है, इसी तरह मिश्रित बैडमिंटन व टेनिस के खेल भी हैं, इसमें दोनों ही एक-दूसरे के 'सहयोगी' होते हैं। खेलों में जो खिलाड़ी वृत्ति होती है, वह सहज स्नेहयुक्त तथा विकाररहित होती है। इसी खिलाड़ी वृत्ति को खरा अध्यात्म कहा जायेगा। पहले स्त्री पत्नी, माता, बहन आदि ही हुआ करती थी। आज वह नागरिक है। आज की नागरिकता सह-नागरिकता है, जो स्त्री-पुरुष समता पर आधारित है। दोनों ही साथ-साथ राजकीय, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में कंधे से कंधा मिलाकर काम करते हैं। इस क्षेत्र में राधाकृष्ण की मैत्री के विकाररहित नाते निर्मित नहीं हुए तो हमारे लोकतंत्र की धज्जियां बिखरे बिना नहीं रहेंगी, वह कलुषित हो जायेगा। स्त्री-पुरुष के बीच विशुद्ध पारस्परिक सख्य-भक्ति के संबंध की स्थापना होनी ही चाहिए। इसका आरंभ कुटुम्ब के नाते-संबंधों से होता है। यह सच है, तो भी ये संबंध समता पर आधारित नहीं होते, स्त्री वहां भी गौण ही मानी जाती है। उसके आर्थिक अथवा अन्य स्वातंत्र्य कृत्रिम ही होते हैं; वहां भी विषमता ही पोषित की जाती है। उसको पूरा मनुष्यत्व ही प्राप्त नहीं हुआ है, इसे समता कैसे कहा जाये। समाज व कुटुम्ब में स्त्री-पुरुष के मध्य नाते-संबंधों के साथ-साथ ही समता पर आधारित मैत्री के संबंध भी बढ़ने ही चाहिए। स्त्री और पुरुष दोनों ही एक-दूसरे के साथ निखालिस मित्रों की तरह तुल्य तथा समान भूमिका में रह सकते हैं। यह सिद्ध हुए बिना, राधाकृष्ण की सख्य भावना जीवन में उतर आयी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्त्री के मातृत्व की उपासना समाज में होती है। उसके भगिनीरूप को भी पवित्र व शुभ माना जाता है। परंतु मैत्री का संबंध इन दोनों ही नातों की अपेक्षा अधिक शुद्ध, निरपेक्ष व मंगलकारी है।

आज रक्त-संबंध के साथ ही स्त्री माने हुए भाई इत्यादि के रिश्ते सुरक्षा हेतु निर्मित करती है, मित्र को राखी बांधती है; क्या इसकी गरज है? क्या स्त्री-पुरुष के मध्य विशुद्ध मैत्री संभव नहीं है? इसका विचार कभी तो करना ही होगा। इसके बिना संविधान में अभिप्रेत स्त्री-पुरुष समता अस्तित्व में ही नहीं आ सकती। समता के इस सिद्धांत की ओर हमारे कदम सशक्तता से आगे बढ़ें, इसी अभिप्राय से संविधान ने ऐसा सिद्धांत भी हमारे समक्ष रखा है : स्त्रियों की प्रतिष्ठा को कमतर करने वाली प्रत्येक प्रथा का त्याग करना प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूल कर्तव्य है। इसके पीछे भी विशुद्ध समता स्थापित करने की भावना ही है, जिसे दूसरे शब्दों में 'सामाजिक ब्रह्मचर्य' अथवा सामाजिक जीवन में ब्रह्मचर्य भावना कहा जाता है। इसका मूल वैयक्तिक ब्रह्मचर्य की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ तथा विस्तीर्ण है।

स्त्री और पुरुष के बीच विषमता के मूल में 'काम' है, तथा काम अर्थात् विकार का इलाज केवल निरपेक्ष स्नेह-संबंध ही है। स्त्री और पुरुष के मध्य दैहिकता निरपेक्ष संबंध संभव ही नहीं, ऐसा मान लेने पर तो स्त्री पुरुष की उपभोग्या वस्तु ही ठहरती है। तब तो उसके अपहरण, उस पर अत्याचार व बलात्कार का कोई अंत ही नहीं है। ऐसी परिस्थिति में वह स्वरक्षित तो छोड़िये, सुरक्षित भी नहीं रह पायेगी। तब उसके जीवन में स्वतंत्र वृत्ति अथवा भावना प्राणवान् नहीं होगी, तब वह भोगायतन ही बनी रहेगी। भयभीत ही वह बरतेगी और जियेगी। भीति और प्रीति एक साथ नहीं टिक सकतीं। कारण कि भय एक ऐसी अंधेरी कोठरी है, जिसमें केवल नकारात्मक भावनाएं ही पनपती हैं। ऐसी भावनाओं को ढोने वाले राधाकृष्ण के कितने ही भजन क्यों न गा लें, उनके गुणगान करते रहें, पर उन्हें 'राधाकृष्ण' इस संयुक्ताक्षर में निहित भावना व पावनता का कभी भी आभास नहीं होगा। मेरी पीढ़ी दकियानूसी, पुराने विचारों की थी और है। आज की युवा पीढ़ी यदि अपने मित्रों, अपनी मैत्रिणियों के साथ निश्छल खुलेपन से व्यवहार करती है, तो उसमें भी कुछ लोगों को दैहिकता और लैंगिकता की बास आती है; क्योंकि जो मन पापी होता है, उसे पाप के अलावा दूसरा कुछ भी नहीं भासता है; यह संशयी मन होता है, जो विनाशकारी होता है। इसीलिए एक शायर ने कहा है—

''मस्ज़िद तो बना दी पल भर में
ईमान की हसरत वालों ने,
मन इतना पुराना पापी है
अब तक भी नमाज़ी बन न सका।''

जो बात मस्ज़िद के संदर्भ में सच है, वही बात मंदिर के संदर्भ में भी शत-प्रतिशत खरी है। राधाकृष्ण के कितने ही मंदिर बनाये गये, मधुरा भक्ति के लिए पुरुषों ने साड़ी पहन कर नृत्य किये। किन्तु मन में विकारभावना जब तक मौजूद है और जब तक राधाकृष्ण के पावन संबंध में, विकार→

आधुनिक मीडिया और भारत का स्त्री समाज

❑ जागृति राही

प्रचारात्मक मीडिया का प्रभाव आज के उपभोक्ता समाज के व्यवहार को निर्धारित करने में बड़ी भूमिका अदा करता है। लोगों की पसंद और उनकी खरीदने की प्रवृत्ति एवं वरीयता को तय करवाने के लिए, मीडिया की यह क्षमता जिसमें वह ट्रेंड और टेस्ट का निर्माण करता है। फिल्मों, टेलिविजन के कार्यक्रमों और संगीत के जरिये काम करता है। ये मीडिया जिसमें इंटरनेट के ब्लॉक्स और साइट्स के जरिये भी यह काम होता है।

मीडिया हमारे जीवन का आज एक ऐसा हिस्सा बन चुका है कि हम समझ भी नहीं पा रहे हैं कि वह हमारे जीवन को कितने बड़े पैमाने पर या सूक्ष्म तरीके से प्रभावित कर रहा है। एडवर्टाईजिंग में इस्तेमाल हो रहा मीडिया विशेष रूप से लोगों की पसंद को बदलने, उनके विश्वास को बदलने, उनकी सोच की दिशा का निर्धारण करने के लिए अब बकायदा, मनोवैज्ञानिकों, डॉक्टरों, विशेषज्ञों की मदद ली जा रही है। जिन प्रोडक्ट्स की हमें जरूरत भी नहीं हैं उनके प्रति हम अनजाने ही आकर्षित होते हैं। वे हमारी जरूरत बना दिए जाते हैं, इतना ही नहीं आज टी. वी., अखबारों की खबरें और फीचर्स भी उसी व्यापारिक हितों से संचालित की जा रही हैं।

मनोरंजनात्मक मीडिया हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित कर रहा है, दो स्तरों पर। एक भीड़ के रूप में हम क्या हैं और एक व्यक्ति के रूप में हम कैसे हों। ये दोनों बातें आप किसी भी उम्र के हों आपको क्या खाना चाहिए, क्या पहनना चाहिए ये सब हमें टीवी में प्रतिकों के माध्यम से समझाया जाता है। प्रचारतंत्र से जुड़े लोग जानते हैं कि हम उन प्रतीकों के पीछे कैसे भागेंगे और उनकी बताई हर बात पर भरोसा करेंगे और इस तरह बिक्री को बढ़ाने में मददगार होंगे। इन्टरनेट इसमें और भी ज्यादा मददगार हो रहा है। आज लोग अपनी पसंद का निर्धारण प्रोडक्ट के बारे में जानने के लिए इंटरनेट पर उसके विषय में दी गयी जानकारी से करते हैं।

इस सारी प्रक्रिया में सबसे ज्यादा टारगेट हो रहे हैं, परिवार में स्त्री, युवा और बच्चे क्योंकि सादगीपूर्ण जीवन जीने की बात आज हमारे दिमागों से मिटाने का काम एक जॉब बन चुका है आधुनिक समाज में। कम जरूरतें, संयम, सरल व सादगीपूर्ण जीवन ये सब आज दुनिया की सबसे बड़ी सच्चाई और जरूरत हैं लेकिन सबसे अधिक हमला इसी एक सच्चाई पर हो रहा है क्यों कि दुनिया को बाजार बना कर चलाना पूंजीवादी अर्थतंत्र की मजबूरी है। देश व दुनिया के सबसे रिमोट एरिया में बसे गांव भी इस ट्रांसफार्मेशन की प्रक्रिया से अछूते नहीं रह गए हैं। खतरनाक बात यह है कि पारम्परिक समाज के छोटे-छोटे विरोधों या टकरावों को छोड़ दें तो इस प्रक्रिया को चुनौती देने की हालत में आज कोई ताकत नजर नहीं आ रही है। जो समाज इस बदलाव को स्वीकार नहीं करना चाहता है, आधुनिकीकरण से इसके नुकसान से खुद को बचाना चाहता है वह भी अपने लोगों को शक्तिहीन बनाने के इस चौतरफा आक्रामक खेल से खुद को बचा नहीं पा रहा है। तकनीकी बदलाव की इस ताकत का मुकाबला हम नहीं कर पा रहे हैं। जिन लोगों ने इस बदलाव के पहले भी जीवन जीया है वे उसके प्रति चिंतित हैं, समाज, सम्बन्धों, परिवारों के टूटन को रोकना चाहते हैं। लेकिन जो युवा बच्चे इसी माहौल में बड़े हो रहे हैं उनकी स्थिति खतरनाक है। इसका एक उदाहरण है कि अपनी सर्वाधिक क्रय क्षमता के कारण अमेरिका के नागरिकों के हाथ में दुनिया भर के मानवाधिकारों, पर्यावरण की चिंताओं, कानूनों, सरकारों और उनकी नीतियों को निर्धारित करने की शक्ति और कुंजी है। आज जो हिंसात्मक वातावरण और हमले दिख रहे हैं हमारे समाज में और बच्चों पर वह हमारे पारम्परिक और सामंती,

---

→व वासनारहित विशुद्ध सख्यभावना अर्थात् मैत्री का मूल्य हृदयस्थ नहीं होता, तब तक यह सब कुछ औपचारिक ही है और तब तक स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति संशयग्रस्त होते ही रहेंगे। जैन धर्म के मूल पुरुष महावीर दिशाओं को ही वस्त्र मानते थे, ऐसी दिगम्बर अवस्था में रहते हुए उपासना करते थे, उनका हृदय, उनके भाव विकार व वासना से रहित थे। इस पवित्र व मंगलमयी भावना की जब तक स्त्री-पुरुषों के जीवन में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती और सामाजिक ब्रह्मचर्य-वृत्ति का जब तक विकास नहीं होता, तब तक केवल मंदिर बनाकर, भजन गाकर, राधाकृष्ण के जीवन के संबंधों का जीवन मूल्य भासित नहीं होगा; और केवल कर्मकांड में उलझकर, भावना को भूलकर भावरहित वृत्ति से व्यवहार करना अध्यात्म अथवा भक्ति नहीं है, इसकी भी प्रतीति नहीं होगी। यही तो शोकांतिका है। राधाकृष्ण कोई व्यक्ति नहीं, अपितु एक परम पावन भावना है, जो नयी पीढ़ी में रच-बस सकी, तो विकाररहित पवित्रता पर आधारित सहनागरिकता की शुरुआत हो पायेगी, जो स्त्री-पुरुष समता का खरा अधिष्ठान है। ❑

('स्त्री-शक्ति विमर्श' से)

पितृसत्तात्मक समाज के उपभोकतावादी समाज में बदलने का नतीजा है जहां बदलाव की दिशा बेहतर सामाजिक मूल्यों की तरफ नहीं, आधुनिक वैज्ञानिक सोच के निर्माण की तरफ नहीं बल्कि अधिक से अधिक उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ाने और एक विशेष तरह की जीवन-शैली को अपनाने की होड़ में लालची बना दिए गए बेबस लोागें की भीड़ है। उसके तनाव का नतीजा है। इस हिंसा की प्रकृति को समझने के लिए अमेरिका के समाज को हमें समझना पड़ेगा।

जहां उपभोग के साम्राज्य के बीच वहां का समाज खो गया है। 30 वर्षों में वहां के समाज ने बच्चों की दैनिक जिंदगी में हुए परिवर्तन को देखा है। जहां बच्चों की मासूमियत और सामाजिक सुरक्षा की संस्कृति की जगह सुविधा की संस्कृति ने ले ली है। बच्चे और युवा रोज कभी न रुकने वाली मार्केटिंग की स्ट्रेटजी से अपनी चेतना और दिमाग पर हो रहे हमलों के शिकार बनाए जा रहे हैं। वहां वस्तुओं के लिए बच्चे हिंसा कर रहे हैं।

एक अखबार का उद्देश्य लोगों की भावनाओं को समझने और उसे अभिव्यक्ति देने के साथ ही साथ लोगों की भावनाओं को जगाने के लिए निर्भयता का वातावरण बनाकर आम आदमी के लिए आवाज बुलंद करने के लिए होता है। संचार माध्यम हमें जानकारियां लेने-देने के माध्यम हैं। लोकप्रिय भाषा में कहें तो प्रेस यानी प्रिन्ट मीडिया और आज का इलेक्ट्रानिक मीडिया, इन्टरनेट यानी नया मीडिया लोगों के लिए उनसे जुड़े मुद्दों की सूचना के आदान-प्रदान समाज की जरूरतों को व्यक्त करने में वाच डॉग की भूमिका अदा करता है।

भारत का संविधान मीडिया के लिए अलग से आजादी की व्यवस्था नहीं करता लेकिन आर्टीकल 19 ए 1 ए द्वारा जिसमें बोलने और अभिव्यक्ति की स्वत्रंता दी गयी है के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से संचालित होता है। आर्टीकल 19 हमारे संविधान की स्वतंत्रता के अधिकार से संबंधित है। इसमें लगभग 75 अलग-अलग कानून जुड़े हुए हैं लेकिन ये सारे मिलकर भी मीडिया के ऊपर पूंजी के प्रभाव को रोक नहीं पा रहे हैं। महानगरीय माहौल से पनपी और पाँव पसारती उपभोक्तावादी बाजार द्वारा संचालित मीडिया प्रभावित समाज की बुनियादी भूल यह है कि इसने संस्कार हासिल करने पर जोर नहीं दिया है, शुरुआत परिवार से हो रही है। परिवार में बच्चों को अव्वल आने की हिदायत दी जाती है, अच्छा बनने की नसीहत नहीं मिलती है। बच्चा देखता क्या है, अपनी मां और बाप को झूठ बोलते हुए, पड़ोसियों से झगड़ते हुए, मां-बाप को ओल्ड एज होम्स में भेजते हुए, किसी आगन्तुक के आने पर अपने बच्चों से यह कहते हुए कि कह दो कि घर पर नहीं हैं। आज का बच्चा वहीं सिखता है जो वह टीवी में देखता है। अपराध हिंसा पैसों के लिए लोगों को शार्ट-कट का सहारा लेते देखता है, पैसा को भगवान मानते देखता है। सामाजिक मूल्यों की धज्जियां उड़ाते देखता है, स्वाभिमान को ताक पर रखते देखता है, त्याग से कोसों दूर रहते हुए देखता है। ऐसे ही परिवार समाज की फैक्ट्री से निकलता है आज का युवा। उसके रोल मॉडल बाजार निर्धारित करते हैं। उसमें चरित्र की उंचाई की महत्ता को समझने की क्षमता नहीं है। उसमें रास्ता और मंजिल का फर्क समझने की क्षमता नहीं है। वह कभी किसी भी मसले पर स्टैन्ड नहीं लेता है। उसमें सच की खातिर लड़ने की ताकत नहीं है। उसमें स्वाभिमान बचाने की ताकत नहीं है। वह बेरोजगार और दिशाहीन है। युवा वर्ग में ऐसे लोगों की बहुतायत हो जाये तो समझिए कि समाज में कई टाईम बम रखे हुए हैं जो कभी भी फट सकते हैं। विगत वर्ष दिल्ली, गुवाहाटी या हमारे आस-पास जो कुछ हुआ इसी सबका नतीजा है।

मीडिया के महात्म्य से ग्रस्त इस युग में मीडिया पर बात करना और वह भी महिला प्रश्न पर, एक ऐसी दुखती हुई रग को छेड़ना है जिस पर हाथ रखते ही हमारे बनाए राष्ट्र-राज्य, समाज-संविधान, धर्म-परिवार सबका ताना-बाना हिलने लगता है। नवजागरण आंदोलन से लेकर आजादी के आंदोलन तक स्त्रियों को स्वतंत्र मनुष्य के रूप में मान्यता देना और राज-समाज के भीतर उसकी रूढ़ छवि को तोड़ने का कार्यभार अधूरा ही रहा। यह स्थिति हमसे निर्मम आलोचना की मांग करती है और इसमें उतरने से भय लगता है। तब जितना संभव हो इस प्रश्न से बचने की कवायद शुरू हो जाती है। मीडिया भी इस व्यवस्था से अलग है, न इस समझ से अछूता। आइये कुछ उदाहरणों और आंकड़ों पर एक नजर डालें। हमें इस दौर के लोकप्रिय मीडिया रूपों में स्त्री की जो स्थिति है और उसकी जो छवि निर्मित होती है इन दोनों को समझने में थोड़ी आसानी हो जाय। इन्टरनेशनल वुमेन मीडिया फाउंडेशन की 2012 की रिपोर्ट बताती है कि पूरे एशिया में मीडिया घरानों में सीनियर मैनेजमेन्ट के पदों पर केवल 17 प्रतिशत महिलाएं हैं। ग्लोबल मीडिया मानेटरिंग प्रोजेक्ट की 2012 की रिपोर्ट के अनुसार कुल खबरों का 38 प्रतिशत हिस्सा पुरुषों द्वारा लिखा या दिखाया जाता है। जबकि 37 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं द्वारा रिपोर्ट की जाती है। दैनिक अखबारों की जो हालत है उसमें महिलाओं की समानता और बराबरी पर आधारित स्टोरी को 9 प्रतिशत

से भी कम जगह मिलती है। जबकि सनसनी खेज अपराध कथाओं को 52से63 प्रतिशत हिस्सा मिलता है। मीडिया के भीतर महिलाओं की कम उपस्थिति है ही और उन्हें पितृसत्तात्मक ढांचे में काम करना पड़ता है और उसे बनाये रखना पड़ता है। हम उदाहरणों की तरफ देखें तो साफ-साफ देख सकते हैं। जब हम दृश्य-श्रव्य माध्यमों की ओर नजर दौड़ाते हैं तो हालात और बदतर ही दिखता है। ग्लोबलाइजेशन के नये दौर में सैकड़ों की संख्या में अवतरित टी.वी. चैनलों को देखा जाय तो मोटे तौर पर उसके हिस्से है—1.खबर, 2.सीरियल, 3.विज्ञापन।

आज देश में तमाम जन-संघर्षों में महिलाओं की बड़ी संख्या शामिल होती है। उदाहरण के लिए एक राजनैतिक रैली में जिसका नारा था, 'दाम बांधों काम दो, वरना गद्दी छोड़ दो' जिसमें 30 से 40 हजार ग्रामीण, गरीब, दलित-पिछड़ी महिलायें थीं लेकिन यह खबर नहीं बनेगी। क्या महिलाओं के सृजन और संघर्ष की छवि नहीं है? आप संघर्ष की खबर से सेक्स आब्जेक्ट में तब्दील नहीं कर सकते। इन चैनलों का बड़ा हिस्सा धारावाहिकों के लिए देखा-जाना जाता है। यदि ध्यान से सारे सीरियलों को देखें तो सभी में स्त्रियों की जो कमन छवि उभारी जाती है उसके अनुसार वे धार्मिक रूप से असहिष्णु, परिवार केन्द्रित षड्यंत्रकारी, राजनैतिक-सामाजिक जागरूकता की समझदारी से शून्य महंगे कपड़ों व गहनों से लदी, विवाहपूर्व या विवाहेतर संबंधों में व्यस्त दिखायी पड़ती हैं। विडम्बना यह कि इन सीरियलों का सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग लगभग 78 प्रतिशत महिलायें ही हैं। इसके बाद जो हिस्सा बचता है जिसमें सबसे ज्यादा कारपोरेट पूंजी लगी है वह है विज्ञापन की दुनिया, जहां सिर्फ कोई वस्तु बेचनी है और मुनाफा कमाना है। यहां भी हर विज्ञापन के साथ एक स्त्री होगी और वह सेक्स कमोडिटी के रूप में पेश की जायेगी। यदि कुछ इतर हुआ तो भी वह गृहदासी की छवि ही होगी। प्रभाकृष्ण और अनिता दिघे की 1990 की रिपोर्ट यह बताती है कि इन चैनलों में दिखाये जा रहे 210 विज्ञापनों में से केवल 35 विज्ञापनों में महिला गृहदासी से इतर किसी भूमिका में है। यह नये भूमंडलीकरण की नयी शुरुआत का दौर था। 2010 में आयी एक रिपोर्ट बताती है कि औसतन सौ में से केवल नौ महिलाएं घरेलू महिला से अलग किसी भूमिका में हैं। नई आर्थिक नीतियों और भूमंडलीकरण को लेकर सबसे ज्यादा प्रचार इस बात का किया गया था कि नई तकनीक के आने के बाद महिला पुरुष का श्रम विभाजन समाप्त हो जाएगा। अब महिलाएं वह सब कुछ कर पायेंगी जो पुरुष करते हैं। लेकिन विज्ञापन की दुनिया में वही पितृसत्तात्मक ढांचा काम करता है और स्त्री को उसके अनुरूप ही भूमिकाबद्ध दिखाया जाता है। कम्प्यूटर की दुनिया में इनर्फोसेस विप्रो, आइबीएम आदि कम्पनियों में महिला कर्मियों की संख्या 30 प्रतिशत है, लेकिन कम्प्यूटर स्क्रीन पर बैठा पुरुष ही नजर आता है। यह देखना दिलचस्प है कि पुराने सामंती मूल्यों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने कैसा ताल मेल बैठाया है। दोनों एक-दूसरे को पालते हुए स्त्री की मिथ्या छवि को पेश कर रहे हैं। पिछड़े हुए मूल्यों के साथ मुनाफे को जोड़कर उसे उत्पादों की बिक्री बढ़ाने में इस्तमाल कर रहे हैं।

यौन-हिंसा के खिलाफ आंदोलन के ज्वार एवं समस्त सद्प्रयासों ने न फिल्मों और विज्ञापनों की अंतर्वस्तु पर कोई प्रभाव डाला है और न इनमें यौनिकता घटी है। ड्योडरेन्ट की गंध के साथ स्त्रियां पूर्व की तरह वाइल्ड हो रही हैं। उधर टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप के स्वामी विनित जैन फरमा रहे हैं कि वे समाचार-उद्योग में नहीं विज्ञापन-उद्योग में हैं। इन अलग-अलग परिघटनाओं की धुरी उत्तर-पूंजीवाद की सैद्धांतिकी में छुपी है। उपभोक्ता क्षेत्र सैद्धांतिकी पूंजीवाद की वह सकल सैद्धांतिकी है जहां वह हमारी कामना के क्षेत्र पर कब्जा करता है। इसलिए यह उत्तर-पूंजीवादी समाज पर सीधे शासन करने की जगह जरूरतों पर सीधे शासन करता है। वह हमारी जरूरतों का नियमन करता है। उपभोग की विचारधारा हमेशा हमारे अनुकूलन में लगी है। वह बता रही है कि शीघ्र ही हम एक नए युग में प्रवेश कर रहे हैं और अब पूर्वयुगों के दारिद्रय खतम होने वाले हैं। शीघ्र ही हम एक आनंद-युग में पहुंच जायेंगे।

आज का मीडिया पूंजीवादी, बाजारवादी अर्थ-व्यवस्था का औजार साबित हो रहा है जिसमें औरतों, बच्चों और समाज के कमजोर तबकों की आवाज और उनका हित पूरी तरह से उपेक्षित और प्रभावित किये जा रहे हैं। इन तबकों के हितों की रक्षा के लिए अलग-अलग कानून बनाने के साथ-साथ हमें लोक-आधारित निस्पक्ष मीडिया के विकास और सुरक्षा की सम्भावना को बढ़ाने वाले संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों की जरूरत है ताकि लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ को पूंजीवाद के स्तम्भ में बदलने से रोका जा सके। उपभोक्तावाद के अर्थशास्त्र के परीक्षण, उसके विश्वस्तर पर प्रभावों के अध्ययन से उसकी पूरी दुनिया को बदलने की ताकत व सांस्कृतिक पूंजीवाद के हमलों को बारीकी से अध्ययन करके ही हम चेतना और सजगता का निर्माण करके संगठित प्रयास और मजबूत राजनैतिक इच्छा-शक्ति कर इस आंधी की दिशा बदल सकते हैं। ❑

गरीबी-बेकारी की कीमत पर विकास

❑ अविनाश चन्द्र

स्वामी विवेकानंद अमेरिका में अपने भाषणों में अकसर समझाते रहते थे कि कोई भी कार्य, धंधा, सेवा, व्यवसाय, इतना निकृष्ट नहीं है कि उसके माध्यम से यदि मनुष्य चाहे तो पूर्णता न प्राप्त कर सके। इसका आशय यह भी निकलता है कि हर धंधे का एक स्वधर्म भी होता है,जो उसमें निहित होता है, जो मनुष्य को उसके धंधे में मार्गदर्शन कर सकता है। इंटरनेट और कम्प्यूटर कार्य पर आज लाखों-करोड़ों युवा लगे हुए हैं। वे अपने व्यापारिक आकाओं के लिए काम करते हुए व्यापार से सम्बद्ध जानकारी हर पल तेजी से पहुंचा रहे हैं ताकि उनके बॉस अधिकतम लाभ कमाने तथा निहित स्वार्थों से सम्बद्ध जानकारी पाने में न चूकें। विकास-शैली से करोड़ों लोग उजड़ गये हैं। उनका पता करें कि वे किस हाल में हैं, वे क्या कर रहे हैं तो पायेंगे कि उन उजड़े हुए लोगों को ठीक से बसाया नहीं जाता। अंतिम कतार में खड़े व्यक्तियों को तेज गति से ऊपर उठाना इंटरनेट कम्प्यूटर का स्वधर्म है।

देश आजाद होने से लेकर अब तक बड़े बांधों, कारखानों, कॉलोनियों को बनाने से भारत में 15 करोड़ लोग उजड़े हैं। यह कितनी संवेदनहीनता की बात है कि ये सब उजड़े हमारी विकास नीतियों से और हमने उनका रेकर्ड भी रखना पसंद नहीं किया। उनके नाम-पते वे कहां हैं, किस हाल में हैं, यह जानकारी रखने की भी जरूरत महसूस नहीं की! क्या यह हमारी सरकार है या अंग्रेजों की विदेशी सरकार? कम-से-कम भारत में इन उजड़े हुए लोगों का स्पष्ट आंकड़ा तो होना चाहिए था। लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली व्यवस्था में, ऐसा क्यों हुआ, पूछें अपने प्रतिनिधियों से कि ऐसा क्यों हुआ?

यह इत्तिफाक ही है कि जल के स्रोत, सम्बद्ध जंगल, जमीन के नीचे खनिज तथा आदिवासी सब एक ही जगह पर हैं तो क्या यह न्यायसंगत होगा कि अनेक प्रदेशों में आदिवासियों को इतनी बड़ी संख्या को हम कहें कि वे शहरों की ओर कूच करें? जंगल उनके लिए, सरकार तथा योजनाकारों की तरह कोई संसाधन जैसे नहीं हैं। जंगल ही उनके घर हैं, वे ही उसकी सही सुरक्षा कर सकते हैं। वे जंगलों को उजाड़ने के बारे में कैसे सोच सकते हैं। उनसे अपना घर छोड़ने को कहा जाय तो वे कितने अस्त-व्यस्त हो जायेंगे। इस त्रासदी को समझा जा सकता है जब नगरवासियों की बड़ी संख्या से कहा जाय कि चार गुना मुआवजा लो और इन स्थानों को खाली कर दो।

आज कानून बनाकर लालच दिया जा रहा है कि बाजार भाव से चार गुना मुआवजा दिया जायेगा और भू-स्वामियों की मर्जी के बिना यह सब नहीं किया जायेगा। यह समाज को अतिलालची बनाने, समाज को खंड-खंड कर डालने और अतिनिकृष्ट अवस्था में लाने की योजना है। यह उस घटिया सोच की सूचक है, लाभ-लोभ-ईर्ष्या और स्पर्द्धा की आग में घी डालने जैसा है। आज का विज्ञान, तकनीकी, विकास सब उसी गंदे आधार पर खड़े हैं। दार्शनिक आर्नाल्ड टायरेटी की छोटी-सी पुस्तक 'इतिहास का एक अध्ययन' में कहा गया है कि ऐसे लालचों को वैज्ञानिकता संतृप्त लालच की संज्ञा दी गयी है। विज्ञान कहता है कि खूब लालच करो तभी विकास होगा। मैं उस विज्ञान की बात कर रहा हूं जो दुनिया के अति धनाढ्य व्यापारियों, कंपनियों के हाथ में है। लालच को अधिक-से-अधिक बढ़ावा देकर हम अंत में किस बिन्दु पर (कहीं सामूहिक हत्याओं पर तो नहीं) पहुंचने वाले हैं, गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

'जनसत्ता' के संपादक-विचारक प्रभाष जोशी ने वाराणसी के एक व्याख्यान में कहा था कि उनके विचार से जल-जंगल-जमीन-लघु खनिज पर आदिवासियों का नियंत्रण एवं स्वामित्व होना चाहिए। उन्होंने कहा कि सकल घरेलू उत्पाद किसके लिए बढ़ाया जा रहा है? उसका लाभ किसे मिल रहा है? आदिवासियों, ग्रामीणों को नहीं मिल रहा है। उन्होंने कहा कि दुनिया के चतुर धनाढ्यों ने धन-समृद्धि-लाभ के तालाब में तली को ऐसे पक्के सीमेंट से लीप दिया है कि लाभ रिस कर नीचे पहुंच ही नहीं सकता। जब 1951 में नहेरू के शासन काल में विनोबा को प्रथम पंचवर्षीय योजना दिखायी गयी तो उन्होंने कहा कि यह तो रिसन के सिद्धांत पर आधारित है। लाभ रिसकर नीचे के लोगों तक कभी पहुंचेगा ही नहीं। इसलिए बाबा का जयजगत। नीचे के लोगों को लाभ कैसे मिले, नेहरू-योजना से अलग, उन्होंने 18 अप्रैल, 1951 को देश को समझने हेतु भारत में पैदल-यात्रा शुरू कर दी थी कि सोचिये कि ऊपर से रिसकर नीचे कुछ भी पहुंचने वाला नहीं है। यदि नाममात्र का ही कुछ पहुंचे तो उसे लोक की आजादी कहेंगे?

पूर्व राष्ट्रपति के. नरायणन ने 26 जनवरी, 2001 को अपने व्याख्यान में कहा था कि कहीं ऐसा न हो कि भारत की भावी पीढ़ियां यह समझें कि भारतीय गणतंत्र का विकास वनवासियों को उजाड़कर किया गया है।

दुनिया का आदर्श इंटरनेट तथा कम्प्यूटरों से भरी दुनिया नहीं हो सकती। युवा लोग कम्प्यूटर एवं इंटरनेट को अपना रहे हैं। यह उनकी मजबूरी हो सकती है। आदर्श नहीं। समाज का आदर्श तो आज भी और हमेशा ही 'समानता, स्वतंत्रता, न्याय और भाईचारा ही रहेगा। हम सोचें कि उस दृष्टि से हम हर कदम पर कितना गिर या उठ रहे हैं। ❑

हिंसा-प्रतिहिंसा मुक्त समाज

❑ किशनगिरी गोस्वामी

हिंसा-प्रतिहिंसा का रास्ता हमेशा विनाश की ओर ही ले जाता है, किसी समस्या के समाधान तक नहीं पहुंचाता। स्थाई, बुनियादी और वास्तविक समाधान अहिंसा द्वारा ही निकल सकता है, जिसकी प्रक्रिया है—पारस्परिक संवाद। अगर हम समस्याओं के चक्रव्यूह से निकलना चाहते हैं, तो अपने भीतर देखने का प्रयास करें। अंदर से जो कुछ निकलेगा, उसी का नाम है—अहिंसा। उसी का नाम है—मैत्री।

अहिंसा कोरा धर्म नहीं है। अहिंसा एक जीवन-शैली है। जिस समाज और राष्ट्र के नागरिकों की जीवन-शैली अहिंसा की होती है, वहां देवता जन्म लेना चाहते हैं किन्तु जिस देश में शराब सस्ती और रोटी महंगी हो, वहां देवता तो क्या सभ्य और शिष्ट आदमी भी आना नहीं चाहेगा।

गांधीजी ने अपनी विशिष्ट निश्चिन्तता के साथ बड़े दृढ़ शब्दों में कहा था—''हमें हिंसा के क्षेत्र में अद्‌भुत आविष्कारों से सतत चकित किया जा रहा है, लेकिन मैं मानता हूं कि अहिंसा के क्षेत्र में, इनसे भी अधिक चमत्कारी आविष्कार किये जायेंगे, जिसकी अभी सपने में भी कल्पना नहीं हो सकती है और जो असम्भव दिखायी देते हैं।''

जिस प्रकार के अहिंसक प्रतिरोध या आत्मबल का शस्त्र गांधीजी ने इस संसार को दिया है, वह विश्व भर के ज्ञानी पुरुषों की शोध का परिणाम और सुफल है। दुनिया के समस्त पीड़ित और पद-दलित लोगों को असत्य के विरुद्ध सत्य की, अत्याचार के विरुद्ध स्वतंत्रता और न्याय की, शस्त्रास्त्र की शक्ति के विरुद्ध आत्मा की, जो लड़ाई लड़नी पड़ती है, उनमें यह आत्मबल उन सबकी सामान्य विरासत और यदि कहा जा सके, तो उनकी एक मात्र आशा है।

जब हिंसा और युद्ध का समर्थन होता है, तब कपट और क्रूरता के हक में प्रथम बलिदान होता है—सत्य और सज्जनता का। फिर बारी आती है—देश की एकता की। द्वेष, निन्दा और गृह-कलह जैसी हिंसा के लिए न किसी बहादुरी की जरूरत है न संगठन की। न धन की और न बुद्धि की। यह सबसे सस्ता व्यापार है। हम आसानी से इसे सभी अच्छे तत्त्वों के बलिदान का युग कह सकते हैं।

बम (परमाणु, रासायनिक, जैविक आदि) के वर्तमान युग में छोटे-मोटे युद्ध, विनाश करते-करते जागतिक युद्ध बन जाते हैं। मात्र गांधी वाले ही नहीं बल्कि युद्ध शास्त्र के प्रवीण, अनुभवी सेनापति एवं विज्ञानवेत्ता तक कह रहे हैं कि अब जागतिक युद्ध में सत्यानाश, उभयनाश और सर्वनाश ही निश्चित होने वाला है।

अहिंसा का दर्शन किसी एक धर्म, एक देश या एक काल से संबंधित नहीं है। यह हर धर्म, हर काल में है। यह हर धर्म के पैगम्बर के उपदेशों में है। यह कुरान और बाईबिल में है। दुनिया की हर जाति इसे अपने-अपने रूप से व्यक्त करती है, लेकिन गांधी और मार्टिन लूथर किंग ने पिछली सदी में प्रेम और सत्याग्रह का जिस तरह से राजनीतिक इस्तेमाल किया, उससे वे 21वीं सदी में और अधिक प्रासंगिक हो गये हैं। अब हर देश के अपने गांधी और किंग होंगे। वे ही वहां के लिए काम करेंगे।

गरीबी, जातिवाद और सैन्यवाद यह तीन बड़ी बुराइयां हैं, इनकी जगह पर न्याय, समानता और प्रेम की स्थापना की जानी चाहिए। आज दुनिया की आधी आबादी के पास महज एक प्रतिशत सम्पदा है। दुनिया में 15 करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। ऐसे में दुनिया के जो देश सामाजिक उत्थान से ज्यादा सेना पर खर्च करते हैं, वे अपनी नैतिक मृत्यु को ही आमंत्रित कर रहे हैं। दरअसल हिंसा अपने आप में एक बीमारी है। उसका फायदा अस्थाई पर नुकसान स्थाई होता है। आज हिंसा का दायरा, परिवार और समुदाय से लेकर राष्ट्र तक बहुत व्यापक हो गया है। हिंसा का एक रूप संस्थागत है—जो बहुसंख्यक समाज राजनैतिक संस्थाओं के माध्यम से अल्प संख्यक समाज पर करता है। इसलिए हमें पूरी दुनिया को एक समुदाय के रूप में समझना होगा। यह भी मानना होगा कि जीवन के सभी रूप एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसलिए जाति और रंग भेद की जंग पर वैश्विक प्रेम, भाईचारे की जरूरत है।

अगर हम सुख, शांति, परस्पर मैत्री एवं अच्छे संबंध चाहते हैं, तो वाणी की अहिंसा का विकास करें। हम वाचिक हिंसा न करें। किसी के लिए कटु शब्द न निकलें। किसी के मर्म पर अंगुली न टिकाएं। किसी पर आक्षेप न करें। यह होगी हमारी वाचिक अहिंसा, जिसकी आज जरूरत है। वाचिक अहिंसा से विचार-भेद हो सकते हैं किन्तु कटुता नहीं होगी। अगर मधुर वाणी का विकास कर लिया जाय तो बहुत सारी समस्याओं से छुटकारा मिल जायेगा। परस्पर के जो कड़वे-तीखे संबंध हैं, उनमें जरूर सुधार होगा और पारस्परिक, पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक संबंधों में मधुरता भी आयेगी।

हिंसा का एक अन्य रूप ऐसा व्यापक और स्थाई है कि उसमें कहीं भी खंड दीख नहीं पड़ता है। यह हिंसा सर्वव्यापी है, सदैव चलती रहती है और वही जब बढ़ती है, तब युद्ध को जन्म देती है। यह हिंसा है—शोषण की, एक्सप्लाईटेशन की। जब तक दुनिया में शोषण जारी है, तब तक युद्ध बंद नहीं हो सकते। रक्त बिगड़ जाय और बुखार न आये, यह भला कैसे संभव है? शोषण अनेक रूप से होता है—एक आदमी अज्ञानता के कारण, दुःस्थिति से, गरीबी के कारण विवश हो जाता है, दूसरा उस परिस्थिति से नाजायज लाभ उठा कर अपना स्वार्थ साध लेता है, यही शोषण है। इस तरह धनी लोग गरीबों को चूसते हैं। स्त्री जाति को पुरुष अपने अधीन रखते हैं। यह बहुरूपी शोषण ही 'कलियुग' है। यह विश्वव्यापी, भयानक और प्रत्यक्ष-हिंसा, प्रेम-धर्म का नाश करती है। मनुष्यत्व को अपमानित करती है। अतः आज का युग-धर्म यह है कि हम इन सब रूपों को पहचान कर 'विविध अहिंसा' का अनुशीलन करें और ऐसी परिस्थितियां बनायें, जिससे मानवता का उदय हो। ❑

सत्य-अहिंसा का शस्त्र ही अणुबम को हरायेगा

❑ भारत डोगरा व रेशमा भारती

किसी भी महान व्यक्ति के अंतिम दिनों के संदेश विशेष महत्त्व के माने जाते हैं, क्योंकि इनमें अधिक परिपक्वता मिलती है। महात्मा गांधी के संदर्भ में यह और भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उनके अंतिम वर्ष सद्भावना स्थापित करने के बेहद कठिन प्रयासों के बीच गुजरे थे। इस दौरान उन्होंने विशेषकर बंगाल, बिहार व दिल्ली में बेहद कठिन व खतरनाक चुनौतियों के बीच काम किया। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इन दिनों उन्होंने सद्भावना व एकता का आह्वान बार-बार किया।

जनवरी, 1948 में अपनी शहादत से कुछ ही दिन पहले एक उपवास के दौरान उन्होंने कहा था, ''जब मैं नौजवान था और राजनीति के बारे में कुछ नहीं जानता था, तभी से मैं हिन्दू, मुसलमान, वगैरा के हृदयों की एकता का सपना देखता आया हूं। मेरे जीवन के संध्याकाल में अपने उस स्वप्न को पूरे होते देखकर मैं छोटे बच्चों की तरह नाचूंगा।....ऐसे स्वप्न की सिद्धि के लिए कौन अपना जीवन कुर्बान करना पसंद नहीं करेगा? तभी हमें सच्चा स्वराज्य मिलेगा।'' *(पूर्णाहुति, खंड 4, पृष्ठ 322)*

साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोगों के दोहरे चरित्र की आलोचना करते हुए गांधीजी ने लिखा, ''राम नाम लेना और व्यवहार में रावण के रास्ते पर चलना निरर्थक से भी गया बीता है। यह केवल पाखंड है। आदमी स्वयं को या दुनिया को धोखा दे सकता है, पर उस सर्वशक्तिमान को धोखा नहीं दे सकता।'' *(हरिजन, 23.6.1946)*

18 जनवरी, 1948 को साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए गांधीजी का उपवास दिल्ली में समाप्त हुआ। उसी शाम गांधीजी ने लोगों को संबोधित करते हुए कहा, ''हम बीती बातों को भूल जायें। आज हम सीखें कि कोई भी इनसान हो, कैसा भी हो, उसके साथ हमें दोस्ताना ढंग से काम करना है। हम किसी के साथ किसी भी हालत में दुश्मनी नहीं करेंगे, दोस्ती ही करेंगे। मेरी नजर में आज तक हम शैतान की ओर जाते थे। आज से मैं आशा करता हूं कि हम ईश्वर की ओर जाना शुरू करते हैं। लेकिन हम तय करें कि एक बार हमने अपना मुंह ईश्वर की ओर घुमाया, तो फिर उसे ईश्वर की ओर से हम कभी नहीं हटायेंगे। ऐसा होगा तो भारतीय संघ दुनिया को विश्व शांति का मार्ग दिखायेगा। मैं चाहूंगा कि हिन्दू और सिख कुरान का अध्ययन करें और उसका अर्थ समझें, जैसे वे भगवद्गीता और ग्रंथ साहब का अध्ययन करते हैं और उनका अर्थ समझते हैं। मैं चाहूंगा कि मुस्लिम भाई-बहन भी गीता पढ़ें, ग्रंथ साहब पढ़ें और उनका अर्थ समझें। जैसे हम अपने धर्म को मानते हैं, वैसे दूसरों के धर्म को भी मानें।....आदर व सहिष्णुता की भावना को बढ़ाकर हम सब धर्मों से सीख सकते हैं।''

साम्प्रदायिक हिंसा से बहुत गहरी वेदना महात्मा गांधी को पहुंची थी और वे बार-बार अपने आप से पूछने लगे थे कि हम में कहां और कैसी कमी रह गयी थी। 30 जुलाई, 1947 को अपने एक पुराने साथी को लिखे पत्र में गांधीजी की मुख्य व्यथा व्यक्त हुई : ''जिस हिंसा को अब तक हमने अहिंसा समझा और अहिंसा के नाम पर अभी तक जिसका आचरण किया, उससे सच्ची अहिंसा का विकास कैसे किया जाये? तीस वर्ष के गलत अभ्यास के बाद लोगों को फिर से सच्ची अहिंसा की ओर कैसे ले जाया जाये? मेरी समस्या यह है। मैं अपने भीतर इस समस्या का हल ढूंढ रहा हूं। मेरे भीतर यही पीड़ा भरी है।''

23 नवंबर, 1947 को उन्होंने 'हरिजन' में लिखा, ''अहिंसा की मेरी कार्य-पद्धति की असफलता से स्वयं अहिंसा में मेरी श्रद्धा मिट नहीं जाती। इसके विपरीत, कार्य-पद्धति का दोष मालूम हो जाने से वह श्रद्धा अधिक दृढ़ हुई है।''

कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ताओं से बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था, ''अणुबम के आगमन से मेरा यह विश्वास प्रबल ही हुआ है कि अहिंसा का शस्त्र ही एकमात्र वह शस्त्र है, जो अंत में अणुबम को हरायेगा और दूसरे सारे शस्त्रों को बेकार बना देगा।''

जून, 1947 में कुछ विदेशी मुलाकातियों से उन्होंने कहा, ''भारत के पास दुनिया को देने के लिए यदि कोई विरासत है, तो वह क्षमा और श्रद्धा का संदेश है, जो उसकी गौरवपूर्ण समृद्धि है। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भारत इसे विनाश के उस खतरे के विरुद्ध खड़ा कर देगा, जो संसार ने अणुबम की खोज करके मोल ले लिया है। सत्य और प्रेम का शस्त्र अमोघ होता है, परन्तु उसके पुजारियों में अर्थात् हम लोगों में कोई ऐसा दोष है, जिसने हमें वर्तमान आत्मघाती संघर्ष में डुबा दिया है। इसीलिए मैं आत्म निरीक्षण का प्रयत्न कर रहा हूं।''

दिसंबर, 1947 में दुखी होते हुए गांधीजी ने कहा था कि ''मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि मैं पृथ्वी पर व्यर्थ का भार बन गया हूं। भारत के पास अब अपनी स्थल सेना है, जलसेना बन रही है और हवाई सेवा भी है। इन सबका अधिक विकास किया जा रहा है। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत अपनी अहिंसक शक्ति का विकास नहीं करेगा, तो वह अपने लिए या दुनिया के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं करेगा।''

तमाम निराशाओं के बीच गांधीजी ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी। उन्होंने बादशाह खान से कहा था, ''जय और पराजय उनके लिए हैं, जो भौतिक शक्ति पर आधार रखते हैं—सत्याग्रही के लिए तो असफलता होती ही नहीं।''

मार्च, 1947 में दिल्ली में हुए अंतर→

वन हैं तो हम हैं

❑ मदन जैड़ा

जल, थल और आकाश मिलकर पर्यावरण को बनाते हैं। हमने अपनी सुविधा के लिए प्रकृति के इन वरदानों का दोहन किया, लेकिन भूल गये कि इसका नतीजा क्या होगा? पर्यावरण विनाश के कुफलों से चिन्तित मनुष्य आज अपनी गलती सुधारने की कोशिश में है। आइये हम भी कुछ योगदान करें। जितने अधिक वन होंगे पर्यावरण उतना ही अधिक सुरक्षित होगा। पर्यावरण की सुरक्षा में जंगलों के महत्त्व को स्वीकार करें। इस साल की थीम है फॉरेस्ट-नेचर एट योर सर्विस यानी 'जंगल-प्रकृति आपकी सेवा में।' इस थीम के पीछे वनों की उपयोगिता और उनके संरक्षण का भाव है। वनों के बगैर आज मानव-समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। वन संसाधनों और इनके संरक्षण के मामले में भारत धनी है। हालांकि यह भी सत्य है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान अनियंत्रित औद्योगिक विकास के कारण वनों को काफी क्षति पहुंची है लेकिन इधर हाल के वर्षों में जागरूकता बढ़ी है और वनों की कीमत पर विकास की परंपरा थमी है। वैसे भी हमारे देश के कई सूबों में वनों और वन्य जीवों का संरक्षण लोगों के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दा भी है। देश में विकास गतिविधियों में इजाफे के बावजूद वन बढ़े हैं। इसलिए भारत के कदमों को वैश्विक स्तर पर भी मान्यता मिल रही है। इस कड़ी में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) ने विश्व पर्यावरण दिवस की थीम के क्रियान्वयन की मेजबानी भारत को सौंपी है।

देश में वन : भारतीय वन सर्वेक्षण संस्थान, देहरादून द्वारा देश में वन क्षेत्रफल के आंकड़े तैयार किये जाते हैं। संस्थान ने 2007 तक के वन क्षेत्रफल के आंकड़े एकत्र किये हैं। इसके अनुसार देश में 6 लाख 90 हजार 899 वर्ग किमी. वन क्षेत्र है। जबकि 2005 में यह 6 लाख 90 हजार 171 वर्ग किलोमीटर था, लेकिन घने प्राकृतिक वन घट रहे हैं और जो वृक्षारोपण हो रहा है, वह उतना प्रभावी नहीं कि घने वनों की कमी की भरपाई कर सके। इसलिए छितरा वन क्षेत्र बढ़ रहा है। सरकार ने वनों को तीन क्षेत्रों में विभाजित कर दिया है। अति सघन वन, मध्यम सघन वन तथा छितरे वन हैं। अब स्थिति यह है कि कुल वन क्षेत्र बढ़ा है लेकिन घने और मध्यम स्तर के वन कम हुए हैं और छितरे वन बढ़ रहे हैं। यह प्रवृत्ति वनों के अंधाधुंध कटान की तरफ इशारा करती है।

कितने हों वन : राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार भू-भाग का 33 फीसदी हिस्सा वनों से आच्छादित होना चाहिए। लेकिन देश के 21.02 फीसदी हिस्से पर ही वन हैं। करीब 2.82 फीसदी भू-भाग पर पेड़ हैं। यदि इन्हें भी वन मान लिया जाये तो देश का कुल वन क्षेत्रफल 23.84 फीसदी ही बैठता है, जो लक्ष्य से बेहद कम है। हां, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर समेत पूर्वोत्तर के राज्यों में 33 फीसदी से अधिक हिस्से पर वन हैं। छत्तीसगढ़, उड़ीसा, गोवा ऐसे हैं जहां वन क्षेत्रफल 33 फीसदी से ज्यादा है। लेकिन विकास परियोजनाओं के चलते यहां भी वनों पर संकट मंडरा रहा है।

विकास और वन : देश में वन संरक्षण कानून, 1980 में बना। इससे पहले वनों के काटने पर कोई रोकटोक नहीं थी। कानून बनने के बाद विकास के लिए भी वनों को काटने की पूर्व अनुमति हासिल करने का प्रावधान है और एक पेड़ काटने के बदले में तीन पेड़ लगाने पड़ते हैं। वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के एक अध्ययन के अनुसार वन संरक्षण कानून बनने से पूर्व देश में प्रतिवर्ष 1 लाख 43 हजार हेक्टेयर वन क्षेत्रफल प्रतिवर्ष घटता था। कानून बनने के बाद इसमें कमी आयी लेकिन अभी भी सालाना 30-35 हजार हेक्टेयर वन क्षेत्र विकास की भेंट चढ़ता है। काटे गये वन क्षेत्रफल के एक तिहाई हिस्से की ही भरपायी हो पायी है।

यूकेलिप्टस से बचें : विशेषज्ञों का मानना है कि वनीकरण नीति में बदलाव की जरूरत है। वनीकरण के नाम पर हमें यूकेलिप्टस जैसे पेड़ लगाने से बचना चाहिए। बल्कि हमारी परंपरागत वन्य प्रजातियों के अनुरूप ही पौधे

→एशिया संबंध सम्मेलन में गांधीजी ने पूछे गये एक प्रश्न के जवाब में 'एक विश्व' की संकल्पना में अपनी गहरी निष्ठा व्यक्त की और कहा कि "मैं अवश्य चाहूंगा कि मेरे जीवनकाल में ही 'एक विश्व' का यह सपना सच हो जाये।"

अपने जीवन के अंतिम उपवास के दौरान जनवरी, 1948 में उन्होंने आदर्श समाज का अपना स्वप्न लोगों के समक्ष रखा कि आदर्श समाज एक ऐसा जन्नत होगा जहां... "न कोई गरीब होगा, न कोई ऊंचा होगा, न नीचा; न कोई करोड़पति होगा, न आधा भूखा नौकर; न शराब होगी, न दूसरी कोई नशीली चीज। सब लोग अपने आप खुशी से और गर्व से अपनी रोटी कमाने के लिए मेहनत-मजदूरी करेंगे। वहां स्त्रियों की वही इज्जत होगी जो पुरुषों की; और स्त्रियों और पुरुषों की अस्मत और पवित्रता की रक्षा की जायेगी। वहां अस्पृश्यता नहीं होगी; सब धर्म समान होंगे। वहां सब कोई समानता, भाईचारे और पवित्रता के आदर्श को प्राप्त करने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करेंगे।" *(सप्रेस)*

लगाने चाहिए ताकि विविधता कायम रहे। दूसरे, यूकेलिप्टस जैसी प्रजातियां ऐसी हैं जिनसे जमीन की उर्वरा शक्ति को क्षति पहुंच सकती है। बेहतर हो कि वनीकरण के दौरान नीम, अशोक के औषधीय पौधे लगें या जामुन, नीबू, आम के फलदार पेड़। कई शहरों में छोटे स्तर पर ऐसी पहल हुई है और वह बेहद सफल रही है। ये पेड़ फल, औषधी के साथ-साथ छाया भी प्रदान करते हैं।

वनों से फायदे : वनों से फायदे ही फायदे हैं। यह सब जानते हैं कि ये हमें ईंधन देते हैं, ताजी हवा देते हैं और बारिश कराते हैं लेकिन सबसे बड़ी बात है कि हमारे द्वारा पैदा होने वाले कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों को वन सोख रहे हैं। पर्यावरण मंत्रालय के ताजा अध्ययन के अनुसार देश में उत्सर्जित होने वाली 11.25 फीसदी ग्रीनहाउस गैसों यानी करीब 13.8 करोड़ टन कार्बन डाइऑक्साइड को जंगल चट कर रहे हैं। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन से बचने की कोशिशें हो रही हैं, विश्व स्तर पर भारत जैसे विकासशील देश अमीर देशों पर दबाव डाल रहे हैं कि या तो वे अपना उपभोग घटायें या हमें मुआवजा दें।

आप भी बचा सकते हैं पर्यावरण

- निजी वाहनों के बजाय पब्लिक ट्रासपोर्ट को तरजीह दें।
- बिजली एवं सीनएजी से चलने वाले वाहनों का प्रयोग करें।
- जहां संभव हो बॉयो डीजल का प्रयोग करें।
- अपने बगीचे और सार्वजनिक स्थानों पर ज्यादा से ज्यादा पेड़-पौधे लगायें।
- पानी का किफायत से उपयोग करें।
- पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा और जल ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों को तरजीह दें।
- बिजली से चलने वाले उपकरणों को जितनी आवश्यकता हो, उतना ही इस्तेमाल करें।
- एयर कंडीशन और इस प्रकार की चीजों का कम-से-कम इस्तेमाल करें, क्योंकि इससे क्लोरो फ्लोरो कार्बन गैस उत्सर्जित होती है, जो वायुमंडल की ओजोन परत को काफी नुकसान पहुंचाती है।
- नदियों और अन्य जल-स्त्रोतों को प्रदूषित न करें, उनमें कचरा न डालें।
- पॉलीथीन का इस्तेमाल बंद करें। इसकी जगह ईको-फ्रेंडली उत्पाद (कागज के थैले आदि) प्रयोग में लायें।
- कूड़े को कूड़ेदान में ही फेकें।
- 'थ्री ऑर' व्यवस्था-रिड्यूस (पर्यावरण के लिए हानिकारक चीजों का इस्तेमाल कम करें), रियूज (चीजों को एक बार के बजाय कई बार इस्तेमाल करें) और रिसाइकल को बढ़ावा दें।
- एक से ज्यादा व्यक्तियों को एक ही इलाके में जाना (जैसे ऑफिस या किसी कार्यक्रम में) हो तो अलग-अलग वाहनों का इस्तेमाल करने के बजाय सामूहिक रूप से जायें।
- पटाखे को बाय-बाय कहें। इससे ध्वनि और वायु प्रदूषण दोनों कम होगा।
- लाउडस्पीकर का इस्तेमाल न करें।
- गैर-जरूरी स्ट्रीट लाइट बंद कर 'लाइट पॉल्यूशन' कम कर सकते हैं।

—इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)

श्रद्धांजलि

दूरभाष पर भाई बाबूराव चंदावार ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बताया कि 81 वर्षीया हंसा बहन माझगांवकर का देहावसान 20 नवंबर, 2013 की सुबह हो गया। हंसा बहन मधुमेह से पीड़ित थीं। आप लंबे समय तक ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार में सेवारत रहीं। आप मुंबई एवं आसपास के गांवों में सर्वोदय-कार्य एवं महिलाओं के उत्थान में लगी रहीं। आप सर्वोदय कार्यकर्ता श्री डेनियल माझगांवकर की धर्मपत्नी थीं। **–स.ज. प्रतिनिधि**

जी. वी. सुब्बाराव को बजाज पुरस्कार

आंध्र प्रदेश सर्वोदय मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष, वरिष्ठ भूदान कार्यकर्ता एवं ग्रामदान निर्माण समिति के संस्थापक श्री जी. वी. सुब्बाराव को रचनात्मक कार्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए वर्ष 2013 के जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

15 नवंबर, 2013 को मुंबई में एक भव्य समारोह में भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने श्री जी. वी. सुब्बाराव को प्रशस्ति-पत्र, स्मृति-चिह्न एवं पांच लाख रुपये से सम्मानित किया।

भूदान में सुब्बारावजी के योगदान के कारण आंध्र प्रदेश के लोग उन्हें 'भूदान सुब्बाराव' के नाम से बुलाते हैं।

सर्व सेवा संघ अपने प्रिय साथी को इस सम्मान के लिए बधाई एवं शुभकामनाएं प्रेषित करता है।

–महादेव विद्रोही,
प्रबंधक ट्रस्टी, सर्व सेवा संघ

सर्व सेवा संघ अधिवेशन

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) का वार्षिक अधिवेशन 1-2 मार्च, 2014 को सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम, जिला-वर्धा (महाराष्ट्र) में संघ-अध्यक्षा सुश्री राधा भट्ट की अध्यक्षता में होगा।

अधिवेशन में समसामयिक विषयों पर चर्चा एवं सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष का चयन होगा। –टी.आर.एन. प्रभु, मंत्री

गतिविधियां एवं समाचार

गांधी-जयंती : जिला करनाल सर्वोदय मंडल की ओर से तहसील घरौंडा के गांव सदरपुर में गांधीजी व लालबहादुर शास्त्री की जयंती 2 अक्टूबर, 2013 के अवसर पर 10 बजे क्षेत्र के सर्वोदय मित्रों ने एक रैली का आयोजन किया। रैली की खूबी यह थी कि रैली में भाग लेने वाले अधिकतर लोगों ने गांधी टोपी पहनी थी। रैली का आयोजन श्री मुस्लिम चौहान ने किया। मार्गदर्शन पानीपत जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री जयभगवान शर्मा ने किया। इस आयोजन में ग्राम सरपंच श्री सोमनाथ और पूरी पंचायत ने भाग लिया। महिलाओं का मार्गदर्शन श्रीमती कविता रानी ने किया।

इस कार्यक्रम में अधिकतर नौजवानों ने भाग लिया। ग्रामफेरी के पश्चात् सभी नौजवानों ने पूरे गांव में सफाई अभियान चलाया जिसमें गांव के घर-मालिकों ने भी पूरी तरह भाग लिया। इस कार्यक्रम की अगुवाई समाजसेवी सर्वश्री नरेश सांवत, राफल सैनी, रामरिख सैनी, मामूराम, भाई जाकिर अली, इरशाद अहमद, इरफान, जाबिर, फाजिल और सारिख चौहान आदि ने बढ़चढ़कर भाग लिया। गांव के नंबरदार चरण सिंह भी इन नौजवानों के साथ सफाई अभियान में लगे रहे। **–महावीर त्यागी,**

अध्यक्ष, हरियाणा सर्वोदय मंडल

× × ×

जिला सर्वोदय मंडल, बरेली (उत्तर प्रदेश) के तत्त्वावधान में गांधी प्रतिमा पर (कसगरान, बरेली) में महात्मा गांधी का 145वां जन्म-दिवस मनाया गया। सभा की अध्यक्षता श्री गांधी मोहन ने की। गांधी प्रतिमा पर पुष्प अर्पित कर सर्वधर्म प्रार्थना का सामूहिक पाठ किया गया।

डॉ. महावीर सिंह ने बापू के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डाला। सर्वश्री गांधी मोहन, भगवान सिंह दीक्षित, गांधी स्मारक समिति के अध्यक्ष ज्ञानस्वरूप आर्य, अक्षय कुमार शर्मा, रजत कुमार, देवाधर बेलवाल, जगदीश निमिष, प्रशांत कुमार सिंह ने विचार व्यक्त किये। **–डॉ. महावीर सिंह**

× × ×

जयप्रकाश नारायण-जयंती : जिला सर्वोदय मंडल, बरेली (उत्तर प्रदेश) द्वारा 11 अक्टूबर, 2013 को लोकनायक जयप्रकाश नारायण की 112वीं जयंती, इंदिरा नगर, बरेली में सादगीपूर्ण मनायी गयी। डॉ. महावीर सिंह ने जयप्रकाश नारायण के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला। सभा की अध्यक्षता श्री बिहारीलाल गुप्ता ने की। सर्वश्री भगवान सिंह दीक्षित, शरद गंगवार, मयंक शर्मा, नवीन सिंह, गंगाराम लोधी, नरेश ने अपने विचार व्यक्त किये। **–डॉ. महावीर सिंह**

गांधी-साहित्य प्रदर्शनी : वाणी मंदिर समिति, जयपुर के तत्त्वावधान में 'सर्वोदय बुक स्टाल' के माध्यम से विनोबा एवं गांधी जयंती के अवसर पर साहित्य बिक्री एवं प्रसार अभियान का आयोजन किया।

विनोबा जयंती सप्ताह में ग्रामीण क्षेत्र के 9 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों में 'गांधी विचार एवं जीवन' विषय पर भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गयी तथा सहभागियों को पुरस्कार के रूप में गांधी-साहित्य दिया गया।

गांधी जयंती के अवसर पर 3 सप्ताह तक राज्य स्तरीय खादी प्रदर्शनी में सर्वोदय साहित्य स्टाल लगाकर साहित्य बिक्री की गयी। इसके अतिरिक्त स्थानीय कई विद्यालयों एवं प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों में गांधी साहित्य बिक्री स्टाल लगाया गया। गांधी-साहित्य बिक्री की दिशा में 'सर्वोदय बुक स्टाल', जयपुर का यह एक सराहनीय प्रयास है। **–डॉ. अवध प्रसाद**

अकेला ही काफी है केला

केला विटामिन सी, पोटेशियम, शक्कर और रेशा-प्राप्ति का उत्तम स्रोत है। शोधकर्ताओं ने कई गंभीर बीमारियों जैसे डिप्रेशन, हैंग ओवर, अल्सर और स्ट्रोक आदि से इसका गहरा रिश्ता खोज निकाला है। उनके मुताबिक इन गंभीर बीमारियों में यदि प्रतिदिन एक केला का नियमित सेवन किया जाय तो सकारात्मक और प्रभावी परिणाम सामने आते हैं। कुछ प्रमुख कारण, जो केले के नियमित सेवन के लिए बाध्य कर देंगे।

रेचक औषधी : *उच्च फाइबरयुक्त केला, रेचक औषधी की तरह कार्य करता है। केले में मौजूद अत्यधिक फाइबर पाचन क्रिया में मदद करते हैं। इसके अलावा केले में पानी को सोखने वाला तत्त्व पेक्टिन होता है, जो आपके मल त्याग को भी आसान कर देता है।*

मूड बनायें : *केला पल-पल बदलते मूड की बीमारी मूड डिस्ऑर्डर और डिप्रेशन से बचाता है। यह शारीरिक और मानसिक तापमान को भी स्थिर रखता है। ब्लडशुगर के स्तर को बढ़ने से रोकता है। सुबह की थकान से भी मुक्त कर देता है।*

दिमाग को रखे चुस्त : *पोटेशियम से भरपूर केला, दिमाग को ऊर्जा प्रदान करता है। हमारी सोचने-विचारने और सीखने की क्षमता का विकास करता है। प्रतिदिन एक केला के सेवन से आपकी वैचारिक और बौद्धिक शक्ति बढ़ जायेगी।*

रौनक लौटाये : *यदि बनीमिया ने आपके चेहरे की रौनक छीन ली है, तो प्रतिदिन एक केला खाइये, चेहरा खिला-खिला दिखेगा।* ❑

पर्यावरण संकट के हल के लिए बने वैश्विक नीति

❑ सुनीता नारायण

आज जलवायु जैसे संवेदनशील मुद्दे पर कोई भी गंभीरता से नहीं सोच रहा है जबकि तमाम मुद्दों से कहीं ज्यादा जरूरी हमारे लिए जलवायु परिवर्तन का विषय है।

पर्यावरण के संबंध में क्या महज यह कह देने भर से हमारे कर्तव्यों की इतिश्री हो जायेगी कि यह ग्लोबल वार्मिंग या जलवायु परिवर्तन का असर है? भारत एक विशाल क्षेत्रफल वाला देश है, जहां पैदावार अच्छी होगी अथवा सूखा पड़ेगा, इसका पूरा दारोमदार गैर भरोसेमंद वर्षा जल पर निर्भर करता है। देश की कृषि योग्य जमीन का 85 प्रतिशत हिस्सा सिंचाई के लिए या तो प्रत्यक्ष रूप से वर्षा जल पर निर्भर होता है या भूजल पर। भूजल का स्तर प्रति वर्ष होने वाली बारिश से ही तय होता है।

हालांकि इस वर्ष मानसून की बारिश अपेक्षाकृत अच्छी हुई लेकिन बिगड़ते पर्यावरण के कारण बरसात की स्थिति हर साल अनियमित होती जा रही है जबकि घरेलू जरूरतों के साथ ही सिंचाई का पानी हमें बेहतर मौसमी बारिश से ही मिलता है। पशुओं की परवरिश का भी यह सबसे महत्त्वपूर्ण जरिया है। लेकिन लंबे समय से भूजल के दोहन से स्थितियां बेकाबू हुई हैं। ऐसे में सवाल उठना लाजमी है कि जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में उत्पन्न अनिश्चितता से लोग कैसे जूझ पायेंगे? फिर जिस तरह किसानों द्वारा गन्ना, गेहूं तथा चावल की फसलों की सिंचाई के लिए ट्यूबवेल के रूप में भूजल का दोहन किया जा रहा है तो इस बात की क्या गारंटी है कि जलस्तर भयावह स्थिति तक नहीं पहुंच जायेगा?

पर्यावरण संरक्षण एवं इसकी जागरूकता के लिए सरकार द्वारा काफी योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है लेकिन इसके अपेक्षाकृत परिणाम नहीं निकलते। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जब तक लोग व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेदारी नहीं लेंगे, तब तक हालात नहीं सुधरेंगे। उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के हिवारे बाजार गांव का जिक्र करना बेहतर होगा। यहां 'चोर के हाथ में चाबी देने' वाली कहावत चरितार्थ होती प्रतीत होती है। 15 साल पहले तक सूखाग्रस्त इस गांव में सिवाय पलायन के लोगों के पास कोई दूसरा चारा नहीं था लेकिन 90 के दशक में वैज्ञानिक सोच और सरकारी योजनाओं के सही कार्यान्वयन के बाद बदलाव की बयार आयी तो यह गांव आज समृद्ध दिखने लगा है।

सिंचाई के मामले में कहीं न कहीं सरकार की गलत नीतियां जिम्मेदार हैं और राज्य सरकारों ने नदियों पर बांध, नहरें वगैरह बनाकर सतह के पानी का प्रबंधन अपने पास रखा है और आज भी लोग सिंचाई के लिए सबसे ज्यादा भूजल का ही दोहन करते हैं। किसी की व्यक्तिगत जमीन का भूजल उसी की मिल्कियत माना जाता है। आज भी लगभग तीन चौथाई हिस्से की सिंचाई भूजल से की जाती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में लगभग 1.9 करोड़ ट्यूबवेल, कुंएं जैसे भूजल के स्रोत हैं। सरकार को अपनी इस नीति पर पुनर्विचार करके सोचना चाहिए कि क्यों उसके प्रबंधन से केवल 35-40 प्रतिशत भूभाग की सिंचाई हो पाती है जबकि ग्राउंड वाटर से 65-70 प्रतिशत भूभाग की। जब हमने वर्षा जल संचयन के पारंपरिक तरीकों को छोड़कर नई तकनीकें अपना लीं तो उनकी कोई वैकल्पिक व्यवस्था क्यों नहीं की गयी?

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के खतरों से निपटने के लिए जब तक कोई वैश्विक नीति नहीं तैयार की जाती, तब तक इस समस्या से निपटना नामुमकिन होगा। कहने को तो पिछले 17 सालों से बड़ी-बड़ी संधियां होती हैं और वादे किये जाते हैं लेकिन रहती सब बेनतीजा ही हैं। इन सत्रह सालों में हमने इस मामले में एक इंच भी प्रगति नहीं की और आज भी वहीं खड़े हैं जहां उस समय थे। इसकी सबसे बड़ी वजह शायद यह है कि ग्रीन हाउस गैसों तथा प्रदूषण नियंत्रण के वादे तो सब करते हैं मगर कोई पैमाना नहीं तय किया जाता कि कौन किस हद तक नियंत्रण करेगा? अमेरिका, जापान, कनाडा तथा न्यूजीलैंड जैसे कई विकसित देश यह कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं कि वे तब तक कुछ नहीं करेंगे जब तक चीन, भारत, ब्राजील तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे विकासशील देश प्रदूषण नियंत्रण के उपाय नहीं करते।

—इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600